अरक्षिता

[सामाजिक, मौलिक उपन्यास]

लेखक
श्रीदेवीप्रसाद धवन 'विकल'
[कुबेर, ससुराल, आत्महत्या, निरंजन शर्मा,
उलटा मार्ग आदि के रचयिता और
'सुमित्रा'-संपादक]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

प्रथमावृत्ति] सं० २००५ वि० [मूल्य २॥।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
३. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

परिचय

श्रीदेवीप्रसाद धवन 'विकल' बहुत वर्षों से साहित्य-सृजन कर रहे हैं। उनके कई उपन्यास हम गंगा-पुस्तकमाला में गूँथ चुके हैं, और इनकी रचनाओं का हिंदी-संसार ने पर्याप्त स्वागत किया है—यह हमारा व्यक्तिगत ज्ञान है। हिंदी में, वर्तमान काल में, इने-गिने साहित्यिक ही रह गए हैं, जो उपन्यास-लेखन-कला में पारंगत हैं। इसमें संदेह नहीं कि धवनजी ने इस ओर अच्छी प्रतिभा और सफलता पाई है।

कानपुर के प्रसिद्ध पुस्तकालय—गयाप्रसाद-लाइब्रेरी—के सेक्रेटरी होने के नाते धवनजी को काफ़ी योरपीय और भारतीय साहित्य पढ़ने को मिला है, और स्वभाव से ही अध्ययनशील होने के कारण उन्होंने कहानी एवं उपन्यास-लेखन-कला के संबंध में गहरा ज्ञान प्राप्त किया है। इसी प्रतिभा को लेकर उन्होंने कानपुर ही से एक श्रेष्ठ कहानी-पत्रिका 'सुमित्रा' का संपादन प्रारंभ किया है। इस पत्रिका को देखकर मेरा दृढ़ विचार हुआ है कि वह अब तक की सभी प्रकाशित होनेवाली कहानी-पत्रिकाओं से बाज़ी मार ले जायगी। इस सर्वांग-सुंदर पत्रिका का अवश्य ही हिंदी-संसार आदर करेगा।

प्रस्तुत उपन्यास में धवनजी ने एक भूली हुई, बहकाई हुई स्त्री का दृश्य खींचा है, और यह दिखलाने की सफल चेष्टा की है कि पति महोदय के अत्यंत उदार होते हुए भी समाज के बंधनों एवं उग्र नियमों के कारण स्त्री किस प्रकार अरक्षिता हो जाती है। उसके अपने सतीत्व एवं प्रतिष्ठा की रक्षा करने में सफल होने पर भी समाज का प्रत्येक अंग उसे संदेह की ही दृष्टि से देखता है। यद्यपि पति उसे क्षमा करके पुनः ग्रहण करने को प्रस्तुत है, पर समाज उसे उसका पूर्ण गौरवमय स्थान प्रदान करने

में असमर्थ है। यह अरक्षिता नारी समस्त संकटों और आपत्तियों का दृढ़ता-पूर्वक सामना करती है, अपने सतीत्व-व्रत में सफल भी होती है, फिर भी वह अपने को पति के खुले हाथों में जाने के अयोग्य समझती, और पति के देखते-देखते आत्महत्या कर लेती है। समाज से लड़ने के उसके उत्साह का इस प्रकार अंत हो जाता है। हिंदू-समाज में ऐसी हजारों अरक्षिता नारियाँ अवश्य होंगी, जो जीवन में एक बार भूल से ग़लत क़दम उठा भी लेती और इस प्रकार अपने को निराश्रित और अरक्षिता बना लेती हैं। समाज को इनके प्रति उदार होना और पति को उनका स्वागत करना चाहिए। इस उपन्यास से पाठकों के हृदय पर इस भावना की गहरी छाप पड़े बिना न रहेगी।

उपन्यास प्रारंभ से अंत तक गंभीर है, और पाठक को मनन एवं चिंतन करने की सामग्री देता है। कदाचित् इस विषय को लेकर इतना रोचक उपन्यास हाल में नहीं लिखा गया है। आशा है, धवनजी की अन्य रचनाओं की भाँति इसका भी स्वागत होगा।

लखनऊ
१५। ११। ४८

ज्योतिलाल भार्गव

(१)

युवती ने एक गहरी निःश्वास लेकर कहा—"यह मेरे साथ आपका विश्वासघात नहीं, तो क्या है ?"

पुरुष भी गंभीर मुद्रा में था। युवती कहती गई—"इस प्रकार मेरा जीवन बचाकर मेरे शरीर के साथ जो उपकार किया है आपने, वह मेरे लिये घातक ही सिद्ध हुआ। इससे तो यही अच्छा था कि मैं मर जाती।"

पुरुष का मुँह खुला—"तुम जो कुछ भी चाहे कह लो, किंतु मैं तो यही कहूँगा कि मैंने तुम्हारे विषय में बड़ा धोखा खाया। अनजाने ही मैं मैं तुम्हारे प्रति इतना बड़ा अपराध कर बैठा हूँ। मैं किसी भी प्रकार के प्रायश्चित्त के लिये तैयार हूँ।"

युवती लंबी साँस लेकर बोली—"तुम्हारे किसी भी प्रकार के प्रायश्चित्त से अब मेरा भला न होगा, हरिश्चंद्र! तुमने मेरा सोने का संसार उजाड़ दिया है। अब मैं क्या मुंह लेकर घर जा सकती हूँ। तुमने (कुछ उत्तेजित-सी होकर) मेरे पति को धोखा दिया, तथा धोखा दिया है मेरे उन भोले-भाले माता-पिता को, जिनकी बदौलत तुम संसार में खड़े होने योग्य हुए। धिक्कार है तुमको!"

हरिश्चंद्र कुछ देर तक मौन रहा, फिर बोला—"मैं कह चुका हूँ कि मैं भ्रम में था। मैं समझता था कि तुम्हारे पिता ने तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारा विवाह कर दिया है। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम स्पष्ट था। क्या मैं ग़लत कह रहा हूँ कमला ?"

कमला क्षण-भर चुप रहकर बोली—"यह ठीक है कि मैं किसी समय तुमसे विवाह करना चाहती थी। यह भी ठीक है कि माताजी का भी कुछ ऐसा ही विचार था, किंतु जब पिताजी ने अपनी इच्छा-वश मेरा ही हित सोचकर उनके हाथ में मेरा हाथ दे दिया, तब से मैंने तुम्हें अपने भाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा है। मुझे न मालूम था कि आगे चलकर तुम्हीं मेरे जीवन को इस प्रकार बरबाद कर दोगे।"

कहते-कहते कमला ने आँचल से अपने आँसू पोछ लिए।

हरिश्चंद्र कमला के दुःख से दुखी था। वह बोला—"अभी कुछ नहीं बिगड़ा है कमला। मैंने अनजाने में भी कभी तुम्हारे शरीर में हाथ नहीं लगाया है। तुम उतनी ही पवित्र हो, जितनी कभी थीं।"

कमला फिर एक लंबी साँस लेकर बोली—"किंतु इस पर विश्वास कौन करेगा अब ?"

हरिश्चद्र ने कहा—"मैं तुम्हें ले चलूँगा, और उनके चरणों

पर अपना सिर रखकर सब कुछ कह दूँगा। वह सज्जन हैं, और मेरी बात का अवश्य विश्वास करेंगे।"

कमला बोली—"यह सब व्यर्थ की बात है। उनके साथ लगभग दो वर्ष रहकर मैं उनका स्वभाव समझ चुकी हूँ। और फिर (रोकर) मेरे पिताजी जिस परिस्थिति में····"

बात काटकर हरिश्चंद्र ने कहा—"उन्हें तुम्हारे आने के बाद तार द्वारा सूचना दे दी गई थी कि तुम अब इस संसार में नहीं हो। तुम्हारे पति ५-६ महीने तुम्हारे लिये बहुत ही विह्वल रहे, उसके बाद वह लखनऊ छोड़कर दिल्ली चले गए।"

कमला मूर्च्छित-सी हुई जा रही थी। हरिश्चंद्र ने सहारा देकर उसे पलँग पर लिटा दिया। कमला आँखें बंद किए लेटी रही।

थोड़ी देर बाद उसकी चेतना जागी। हरिश्चंद्र ने धीरे से कहा—"पीने के लिये कुछ दूँ ?"

कमला ने सिर हिलाकर मना कर दिया। हरिश्चंद्र चुपचाप खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद कमला ने धीरे से कहा—"तो उनके लिये मैं मर चुकी। अब इसी प्रकार·····"

हरिश्चंद्र बोला—"मैं सौगंद खाकर कहता हूँ कमला कि मैं तुम्हें आज से अपनी बहन ही समझूँगा। पहले तुम्हें खिलाकर तब खाऊँगा। एक बार जो अपराध हो गया है, उसके लिये

जीवन-भर प्रायश्चित्त करूँगा। बोलो, क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगी?"

कमला के मुँह से निकला—"क्षमा"—

और वह चेतना-शून्य हो गई।

(२)

चार वर्ष बाद—

× × ×

धुँधले अंधकार में किसी को दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा देखकर जगत के मुँह से निकला—"कौन ?"

"मैं।"

किसी परिचित स्वर की कल्पना करते ही जगत सिहर-सा उठा। वह घबराकर जल्दी से बोल उठा—"तुम—तुम—कौन··"

स्त्री का स्वर बोला—"मैं—कमला।"

जगत के पसीना आ गया। स्वर और आकार कमला-सा ही पाकर उसके होश उड़ गए।

स्त्री बोल उठी—"क्या डर गए ?"

आश्चर्य के साथ जगत का मुँह खुला—"तुम—तुम जीवित······"

स्त्री ने कहा—"हाँ, मैं जीवित ही हूँ। क्या विश्वास नहीं हुआ ?"

जगत के मुँह से निकला—"क्या सच ? आश्चर्य !"

स्त्री धीरे से बोली—"तुम्हारे लिये तो मैं मर ही गई हूँ। क्या मेरे जीवित रहने पर विश्वास कर सकोगे ?"

जगत की विचित्र दशा थी। क्षण-भर चुप रहकर बोला—
"अब—तो—फिर—फिर क्या चाहती हो ?"

स्त्री बोली—"क्या मेरे लिये तुम्हारे घर में खड़े होने के लिये भी स्थान……"

जगत अपने में न था। आज जिस स्त्री को वह गत चार-पाँच वर्षों से मृत समझता आया है, उसे एकाएक सामने खड़ा देखकर उसे वस्तु-स्थिति पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। इतनी अभूतपूर्व घटना, और उसी के साथ घटित ! आश्चर्य !!

वह निर्भीक पुरुष था। उसके स्थान पर यदि कोई और भीरु पुरुष होता, तो डरकर कदाचित् चिल्ला पड़ता। उसे निरुत्तर देखकर कमला उसके कुछ और निकट आकर बोली—"सोच में पड़ गए क्या ? क्या कुछ दिन निकट भी रहने योग्य नहीं रह गई ? स्थान मिलेगा या वापस जाऊँ ?"

जगत कुछ सिटपिटाकर बोला—"क्यों—क्या—लेकिन..."

कमला बोल उठी—"मैं समझ रही हूँ कि तुम क्या कहना चाहते हो। यही न कि अब मेरा स्थान रिक्त नहीं है। तुम्हें किसी से पूछना पड़ेगा। यही कि और कुछ ?"

जगत धीरे से बोला—"किंतु इसमें मेरा दोष तो कुछ नहीं है। तुम्हारे जीवित न रहने से—का समाचार पाकर ही तो... "

कमला बोली—"मैं स्थिति को समझ रही हूँ। किंतु यदि

मेरा थोड़ा-सा भी अधिकार इस घर में न हो, तो मैं फिर जाऊँ।"

जगत सोचने लगा। कमला बोली—"परिस्थिति में पड़कर आई हूँ। यदि अधिक समय के लिये स्थान न दे सको, तो थोड़े ही दिनों के लिये सही। अपनी स्त्री को मेरा परिचय दे भी सकते हो। और, यदि डर लगता हो, तो फिर जो चाहे, सो कह देना।"

सिर खुजलाते हुए जगत बोला—"तो फिर—क्या कल तक के लिये······"

कमला मन-ही-मन कुढ़ी, और हँसी भी। वह उसके स्वभाव से भली भाँति परिचित थी। बोली—"क्या डर लगता है पत्नी महोदया से? अच्छी बात है, मैं कल आ जाऊँगी। क्या कुछ आपत्ति है······"

जगत कुछ खिसियाना-सा होकर बोला—"नहीं, इसमें क्या आपत्ति है। घर तो तुम्हारा भी······"

कमला बोल पड़ी—"किंतु घटना-चक्र में पड़कर सब कुछ खो जो चुकी हूँ—तुम, घर-बार, सभी कुछ—सभी कुछ।"

जगत चुप रहा। कमला जाने लगी, तो वह बोला—"किंतु यह सब क्या है कमला? मुझे कुछ न मालूम होगा?"

कमला ठिठकी, और उसकी ओर मुड़कर बोली—"क्या करोगे सब कुछ सुनकर। क्या मुझे अब भी मृतक समझते

रहने में कुछ हानि है तुम्हारी ? मैं तुम्हारे घर......किंतु कुछ नहीं .....कुछ नहीं......"

वह आँचल से आँसू पोछती हुई धीरे से जाने लगी।

जगत ने कुछ उजेले में देखा—वही गोरा रंग वही ठिगना कद और एकहरा शरीर।

वह चुपचाप खड़ा रहा।

× × ×

पति को चुपचाप पलँग पर लेटे हुए देखकर सरला ने कहा—"तबियत तो ठीक है न ?"

जगत ने एक साधारण-सी जमुहाई लेते हुए कहा—"नहीं तो। यों ही लेट गया।"

सरला क्षण-भर चुप रहकर बोली—"चाय बना दूँ ?"

जगत ने उठकर बैठते हुए कहा—"पी लूँगा।"

सरला चली गई।

जगत की इच्छा चाय पीने की बिलकुल न थी। वह इसी बहाने सरला को टालना चाहता था। सरला वास्तव में सरला थी; पढ़ी-लिखी, सीधे स्वभाव की तथा पति में अटूट श्रद्धा रखनेवाली। पहली स्त्री कमला के देहावसान के बाद सरला को पाकर जगत को संतोष हुआ था। कमला जरा उग्र स्वभाव की थी; स्वाभिमानिनी, अपने मुँह से निकली हुई बात पर अड़नेवाली, तथा पति पर मनमाना शासन करनेवाली। जगत उससे अटूट प्रेम करता था, किंतु

जितना ही वह दबता गया, कमला उतना ही उसे दबाती गई।

एक दिन कमला ने उससे कहा था—"मर्दों का प्रेम सब दिखावटी हुआ करता है; एक मरी नहीं कि चट दूसरा ब्याह किया।"

जगत को मरने-जीने की बात से स्वभावतः चिढ़ थी; झल्लाकर बोला—"औरतों को दिन-रात मरने-जीने का ही पचड़ा सूझता रहता है। चलो, अपना काम करो।"

कमला मुँह बनाकर बोली—"ये बातें किसी और को सुनाना। मैं मर्दों की नस-नस जानती हूँ, और खास तौर से तुम्हारी। एक दिन मरकर दिखा भी दूँगी तुम्हें। महीना-भर भी न बीतने पाएगा, और तुम······"

उसके मुँह पर हाथ रखते हुए जगत ने कहा—"चुप भी रहो कमला! क्यों व्यर्थ का पचड़ा······"

हाथ एक ओर झटकते हुए कमला बोली—"मैं तो खरी बात कहती हूँ, चाहे बुरा लगे और चाहे भला।"

जगत वहाँ से टल गया।

और, कुछ ही दिन बाद कमला एकाएक बीमार पड़ गई। उसकी बिगड़ती हुई हालत देखकर जगत बहुत घबराया। बनारस में कमला के पिता के पास सूचना भेज दी गई। रामेश्वरनाथ ने आकर कमला को अपने घर बनारस ले आने

की इच्छा प्रकट की। इच्छा न रहते हुए भी उसे कमला को भेजना पड़ा।

१०-१५ दिन तक तो उसकी हालत सुधरने का समाचार बनारस से आता रहा. किंतु एकाएक उन्हें तार मिला कि ६-७ दिन हुए, कमला का स्वर्गवास हो गया। जगत सिर पकड़कर रह गया।

कमला के वियोग में जगत बहुत दिन तक दुखी और विक्षिप्त-सा रहा। उसे दिन-रात कमला ही सामने खड़ी दिखलाई पड़ती थी। घर उसे काटने-सा दौड़ता था। संबंधियों और मित्रों ने उसे दूसरा विवाह करने की सलाह दी। घर में तबियत न लगती देख वह सब कुछ बेच-बाचकर दिल्ली चला गया। लखनऊ की जायदाद बेचने से उसे लाखों रुपया मिल गया था, अतएव दिल्ली में एक छोटा-सा मकान खरीदकर वहीं रहने लगा। और भी जायदाद खरीद लेने से उसे किराए की अच्छी-खासी आमदनी हो गई थी।

किंतु थोड़े ही दिनों में उसने अनुभव किया कि कोरी भावुकता में पड़कर जीवन बरबाद करना ठीक नहीं। अभी उसकी अवस्था भी २७-२८ वर्ष से अधिक न थी। विवाह के प्रस्ताव भी अधिक आ रहे थे, अतएव सरला को अनुकूल पा उसने अंत में उसके साथ विवाह कर लिया।

सरला को पाकर जगत संतुष्ट हुआ। वह धीरे-धीरे कमला

को भूलने लगा, और सरला भी उसे नया जीवन प्रदान करने में सफल हुई।

और, आज उसी कमला को एकाएक अपने सामने पाकर उसके मस्तिष्क की दशा फिर विकृत हो गई। यद्यपि कमला से बिछुड़े उसे ४-५ वर्ष हो गए थे, किंतु आज उसे वह घटना कल की-सी प्रतीत होनें लगी। "तो फिर क्या कमला के पिता ने उसे धोखा दिया? और क्यों?"

सरला चाय लेकर आ गई। जगत चाय पीने लगा। वह सतत प्रयत्न करने पर भी सरला से अपनी चिंता छिपा न पा रहा था।

कुछ घबराकर सरला बोली—"जी तो ठीक है न आपका?"

चाय का प्याला मेज पर रखते हुए जगत ने कहा—"हाँ-हाँ, कोई बात नहीं है भाई!"

सरला पति से डरती थी, किंतु फिर भी साहस करके बोली—"सिर में दर्द है क्या?"

कुछ खीझकर जगत बोला—"तुम तो पीछे पड़ जाती हो। कह तो दिया कि ठीक हूँ।"

सरला खिसियाकर धीरे से कमरे के बाहर चली गई। जगत ने सोचा, कदाचित् उसने सरला से कुछ कड़ी बात कह दी है।

उसने पुकारा—"सरला!"

सरला चुपचाप नीचा सिर किए उसके पास आकर खड़ी हो गई।

ज़रा हँसी का बरबस भाव प्रकट करते हुए वह बोला—"बुरा मान गईं ?"

सरला ने धीरे से आँचल से आँसू पोंछ लिए।

जगत ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"पगली ! मैंने ऐसी कौन-सी बात कह दी ? ज़रा ज़ोर से बोलने का तो मेरा स्वभाव ही है।"

सरला चुपचाप कुरसी पर बैठ गई। जगत अब तक यह निर्णय न कर सका था कि वह किन शब्दों में सरला से सब कुछ कहे।

बहुत कुछ सोचने के पश्चात् वह बोला—"और तुमसे एक बात कहना है सरला !"

सरला ने सिर उठाकर पति की ओर देखा।

जगत चुप था।

उसे कुछ भी कहने में परेशानी-सी मालूम पड़ रही थी। सरला ने भाँप लिया कि बात कुछ असाधारण अवश्य है।

थोड़ी देर चुप रहकर जगत ने कहा—"बात यह है कि मेरे एक मित्र की पत्नी कुछ दिन के लिये मेरे यहाँ रहना चाहती हैं।"

इतना कहकर वह चुप हो गया। सरला पति के मुँह की

ओर देखने लगी। जगत बोला—"इसी चिंता में पड़ा हुआ था।"

सरला बोल उठी—"तो इसमें चिंता की कौन-सी बात है? वह शौक़ से जब तक चाहें, रह सकती हैं।"

जगत सरला का मुँह देखने लगा।

सरला बोली—"सामनेवाला कमरा खाली करवा दूँगी उनके लिये, बस। उन्हें कुछ भी कष्ट न होने पाएगा।"

क्षण-भर चुप रहकर जगत ने कहा—"किंतु वह ज़रा उग्र स्वभाव की हैं सरला। तुम्हें तो किसी प्रकार की असुविधा न होगी?"

सरला बोली—"मुझे क्या असुविधा होगी। मेरी किसी से लड़ाई नहीं होती। मैं तो अपनी सौत के साथ भी रह सकती हूँ। अपने में क्षमता होनी चाहिए।"

जगत सरला का मुँह देखने लगा। सरला उठकर बाहर चली गई।

जगत ने धीरे से एक निःश्वास ली।

यद्यपि वह सरला की बातों से संतुष्ट हो गया था, किंतु फिर भी वह कमला के स्वभाव से भली भाँति परिचित था। सरला के जाते ही उसके हृदय का तूफ़ान फिर उमड़ आया।

(३)

कमला ने सरला को सामने देखकर रूखे-से स्वर में कहा—"आप ही श्रीमती सरलादेवी हैं ?"

सरला ने दोनो हाथों को जोड़कर प्रणाम किया।

कमला बिना प्रणाम को स्वीकार किए हुए ही बोली—"मेरे लिये कौन-सा कमरा ठीक किया है तुमने ?"

सरला ने समझ लिया कि यह स्त्री अवश्य उग्र स्वभाव की है। बोली—"सामनेवाला कमरा आपके लिये कदाचित् ठीक रहेगा। आपका सामान कहाँ है ?"

कमला उसी प्रकार रूखे स्वर में बोली—"मजदूर ला रहा है। जल्दी से कमरा खुलवा दो। और (चारों ओर देखकर) इस घर में तो कहीं बैठने का भी स्थान नहीं दिखलाई पड़ता।"

सरला ने जल्दी से एक कुरसी लाकर रख दी।

कमला कुरसी पर बैठ गई। सरला ने कहा—"आप स्नान करेंगी ?"

कमला ज़रा चिढ़कर-सी बोली—"भाई, दिमाग मत चाटो, मैं अपनी व्यवस्था अपने आप कर लूँगी।"

सरला खिसियानी-सी होकर उसका मुँह देखने लगी। कमला हथेली पर गाल रखकर बैठ गई।

सरला चुपचाप उसके लिये कमरा ठीक करने लगी। मजदूर सामान लेकर आ गया था, सरला ने उसे कमरे में रखवा दिया।

कमला बड़ी देर तक कुरसी पर मूर्तिवत् बैठी रही, फिर अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट गई।

थोड़ी देर बाद जगत आया। उसने सरला से कहा—"वह खाना खा चुकी?"

सरला ने सूखे मुँह से कहा—"अभी नहीं।"

जगत बोला—"तो अब तक खिला क्यों नहीं दिया?"

सरला कुछ बोली नहीं; चुपचाप थाली में भोजन परोसने लगी।

जगत स्नान आदि से निपटकर जब आया, तो सरला थाली परोसे हुए बैठी थी। उसने कहा—"खिला दिया?"

सरला ने एक बार उसके मुँह की ओर देखा, और फिर थाली लेकर कमला के कमरे की ओर चली।

मेज पर थाली रखते हुए सरला ने धीमे स्वर से कहा—"भोजन कर लीजिए।"

कमला अब तक लेटी हुई थी। उठकर बैठ गई, और बोली—"वह आ गए या नहीं?"

सरला ने उसकी आँखों में आँख मिलाकर कहा—"कौन?"

कमला स्फुट स्वर से बोली—"आपके पति महोदय, और कौन?"

सरला को उसका इस प्रकार का व्यवहार बहुत बुरा लग रहा था, किंतु धीरे से बोली—"हाँ, आ गए।"

कमला खाने बैठ गई। सरला धीरे से कमरे के बाहर आ गई।

जगत ने उसे देखकर कहा—"मेरी थाली भी वहीं पहुँचा दो।"

सरला ने एक बार ज़रा आश्चर्य से पति के मुँह की ओर देखा, और फिर धीरे से पाक-शाला की ओर चली गई। कमला के व्यवहार के साथ-ही-साथ उसे पति के व्यवहार में भी कुछ-कुछ शुष्कता का आभास मिला। पहली बार ही उसके मन में प्रश्न उठा कि "यह स्त्री है कौन?"

जिस समय सरला दूसरी थाली लेकर कमला के कमरे में पहुँची, उस समय जगत कमला से धीरे-धीरे बातें कर रहा था। सरला ने उसके सामने थाली ले जाकर रख दी।

जगत चुपचाप खाने लगा। सरला ने कमला के पास जाकर पूछा—"और कुछ लाऊँ बहन?"

कमला ने मुँह बनाकर कहा—"हम लोगों को अब कुछ न चाहिए।"

सरला ने पति के मुँह की ओर देखा। जगत बाबू बोल उठे—"हाँ-हाँ, अब कुछ न चाहिए। तुम जाकर खाओ।"

सरला चुपचाप लौट पड़ी। न-जाने क्यों उसकी आँखों में

आँसू आ गए। वह चुपचाप उन्हें आँचल से पोछकर रसोई की ओर चल दी।

रात को जब जगत सोने के लिये कमरे में गया, तो सरला ने कहा—"यह हैं कौन ?"

जगत कुछ अव्यवस्थित-सा था, बोला—"कौन ?"

सरला ने कहा—"हमारे यहाँ जो अतिथि बनकर आई हैं।"

जगत इस उत्तर के लिये तैयार न था, क्षण-भर रुककर बोला—"मेरे एक सहपाठी हैं बनारस में। उन्हीं की पत्नी हैं।"

सरला चुप रही। वह डरती थी कि अधिक प्रश्न करने से वह नाराज न हो जायँ।

जगत रजाई ओढ़कर लेट गया, और सोने का उपक्रम करने लगा। सरला भी बिना कुछ कहे-सुने अपनी चारपाई पर ओढ़कर लेट गई।

किंतु नींद दोनो में से किसी की आँखों में न थी। जगत अपनी उधेड़-बुन में था। उसके हृदय से सरला धीरे-धीरे खिसक-सी रही थी, और कमला उसमें फिर से प्रवेश कर रही थी। उसे दिन में केवल एक बार ही, भोजन के समय ही, कमला से बात करने का अवसर मिला था। वह कमला से सारी कथा सुन चुका था, और उसने उसे निर्दोष भी मान लिया था, किंतु अब किया क्या जाय ? कमला भी अब निरवलंब थी, क्योंकि कुछ मास पूर्व ही हरिश्चंद्र उसे छोड़कर कहीं चला गया था।

जगत बड़ी देर तक करवटें बदलता रहा। उसकी परेशानी सरला से छिपी न रह सकी, क्योंकि उसकी आँखों में नींद न थी।

एकाएक आधी रात के वक्त जगत अपने पलँग पर उठकर बैठ गया। उसने ग़ौर से सरला की ओर देखा। सरला ने आँखें मूँद लीं। वह पलँग से नीचे उतरा, और धीरे से पैर रखते हुए दरवाज़े के पास आया। एक बार सरला की ओर फिर देखा, और आहिस्ते से दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गया।

सरला को पति की इस प्रकार की कार्यवाही पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसका दिल धड़कने लगा, और वह घबरा उठी। उसके जी में आया कि वह बाहर जाकर पति का अनुसरण करे, किंतु वह डरी कि कहीं वह नाराज़ न हो जायँ।

लगभग आध घंटे बाद जगत धीरे से किवाड़ खोलकर अंदर आया, और चुपचाप पलग पर लेट गया।

उस रात सरला को नींद नहीं आई। रात-भर वह परेशानी के साथ करवटें बदलती रही, और सबेरे ५ बजे ही वह कमरे के बाहर हो गई।

उस समय जगत ख़ुर्राटे ले रहा था।

स्नान आदि से निवृत्त हो सरला चाय की तैयारी में लगी। वह चूल्हे के पास बैठकर कुछ सोच रही थी, इतने में कमला आकर पास ही खड़ी हो गई।

सरला ने उसे आश्चर्य से देखा, और फिर बोली—"आइए, बड़े सवेरे उठ बैठीं आप ?"

स्वभाव के प्रतिकूल कमला मुस्किराकर बोली—"सदा सबेरे ही उठती आई हूँ, किंतु बड़ी जल्दी चाय बनाने लगीं तुम ?"

कमला का बदला हुआ टोन देखकर सरला को कुछ आश्चर्य हो-सा हुआ। बोली—"वह तो सबेरे ही चाय पीने के आदी हैं, किंतु आज ज़रा उनको उठने में देर हो गई।"

कमला बोली—"किंतु वह तो सबेरे उठने के आदी कभी न—"

और उसने दाँतों-तले उँगली दाब ली। सरला उसके मुँह की ओर देखने लगी।

कमला बात को सँभालने की नीयत से बोली—"उन्होंने कल कहा था कि मैं ज़रा देर में उठने का आदी हूँ।"

सरला ने ताड़ लिया कि बात बनाकर कही गई है। वह बोली—"किंतु बात ऐसी तो नहीं है। यहाँ रहकर आप देख लेंगी कि वह कितने तड़के उठते हैं।"

कमला क्षण-भर चुप रहकर बोली—"किंतु मैं क्या बैठी रहूँगी, दो-एक दिन की बात है।"

सरला आत्मीयता प्रकट करती हुई बोली—"तो ऐसी जल्दी भी क्या है ? अभी आपको आए हुए दो दिन भी तो नहीं हुए।"

कमला चुप रही। सरला फिर बोली—"आपके आ जाने से घर में रौनक़ मालूम पड़ती है। दस-पाँच दिन तो और रहिए।"

कमला चुपचाप खड़ी रही, फिर अपने कमरे की ओर चल दी।

सरला ने सोचा—अजब रहस्य है!

× × ×

कमला बोली—"मैं चली जाऊँगी। इस प्रकार यहाँ रहकर मैं किसी पर अत्याचार नहीं करना चाहती।"

जगत ने कहा—"मैं तुम्हारी बात समझ न सका कमला! यहाँ तुम्हें कष्ट ही क्या है?"

कमला ज़रा रुककर बोली—"मैं किंचित् उग्र स्वभाव की हूँ। सरला ठहरी साधारण, सरल तथा विनम्र। और फिर......"

कमला चुप हो गई।

जगत बोला—"कहो, कहो, क्या कह रही थीं?"

कमला बोली—"इस प्रकार लुक-छिपकर आप जो रात्रि में मेरे कमरे में आ जाते हैं, यह ठीक नहीं है। सरला इस संबंध में क्या सोचती होगी?"

उसके हाथ पर हाथ रखते हुए जगत बोला—"किंतु तुम से न मिलूँ, यह अब मुझसे नहीं हो सकता कमला। मैं तो........."

मुँह बनाकर कमला बोली—"रहने दीजिए इन बातों को।

वे दिन चले गए, जब हम-तुम इस प्रकार की बातें कर सकते थे। इस तरह की बातें अब तुम जाकर सरला से करो।"

जगत बोला—"तो क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम्हारे हृदय में अब मेरे लिये........."

बात काटकर कमला बोली—"मुझे इस प्रकार तंग न करें आप। आप लोगों के हृदय में जिस प्रकार का प्रेम रहता है, वह सब मैं भली भाँति जानती हूँ। मेरा अपना निज का मार्ग है, उससे मुझे कोई नहीं हटा सकता।"

जगत गिड़गिड़ाकर बोला—"मेरा दोष तो बता दो कमला! मैं इस प्रकार तुम्हें न जाने दूँगा, चाहे मुझे सभी कुछ छोड़ना पड़े।"

"चाहे सरला को भी छोड़ना पड़े?"—कमला ने पूछा।

"अवश्य।" जगत के मुँह से निकला।

कमला आश्चर्य से पति का मुँह देखने लगी, और बोली—"तब ठीक है। अब मुझे आज ही इस घर से चला जाना चाहिए। मैं जिस बात के लिये डरती थी, वही हुआ।"

जगत उसकी ओर गौर से देखता हुआ बोला—"तब, मैं क्या करूँ कमला? तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

कुछ सोचकर कमला बोली—"यदि तुम चाहते हो कि मैं यहाँ रहूँ, तो तुम्हें यह आशा छोड़ देनी पड़ेगी। अपने अपराध से मैं दूसरे का जीवन बरबाद करना नहीं चाहती।

मैं जिस प्रकार रहना चाहती हूँ, यदि न रह सकी, तो निश्चित रूप से चली जाऊँगी।"

जगत चुप रह गया। कमला ने कहा—"अब रात काफ़ी जा चुकी है। जाकर चुपचाप सो जाइए।"

जगत धीरे से उठकर बाहर आ गया। अपने कमरे में प्रवेश करने पर उसे ज्ञात हुआ कि सरला सो रही है।

किंतु क्या सरला सो रही थी? पति को चोरों की भाँति रात्रि के दो बजे अपने कमरे में घुसते देख उसने धीरे से एक साँस ली, और रो पड़ी।

---

(४)

उस दिन दिल्ली में एक राजनीतिक जुलूस निकलने वाला था। कमला ने उसमें सम्मिलित होने की तैयारी की। जगत ने पूछा—"कहाँ चलीं कमला ?"

कमला चप्पल पहनती हुई बोली—"ज़रा जुलूस में जाऊँगी। घर में बैठे-बैठे जी ऊब गया है।"

कुछ देर चुप रहकर जगत बोला—"मगर उसमें तो बड़ी भीड़-भाड़ होगी।"

कमला ने लापरवाही से उत्तर दिया—"तो क्या हुआ ?"

जगत चुप रहा। कमला चली गई।

उस दिन से कमला ने राजनीतिक हलचल में भाग लेना शुरू कर दिया। कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में जाती, महिलाओं के संगठन में भाग लेती तथा घर में दिन-भर तकली पर सूत कातती रहती। अब वह सरला से भी अधिक न बोलती थी, और यदि बोलती भी, तो सुंदर भाषा में कभी-कभी उसे जब दौरा-सा आ जाता था, तो वह विचित्र-सी हो उठती। सरला से बड़ा बुरा व्यवहार करती, जगत से उलझती तथा बिना स्नान-भोजन के दिन-भर कमरे में पड़ी रहती। कभी-कभी काफ़ी रात बीत जाने पर घर आती। इधर कुछ दिनों

से दो-चार युवक उसे घर से लिवा ले जाते। कभी-कभी कुछ खद्दरधारी उसके साथ घर पर आते, और उसके कमरे में काफ़ी देर तक बैठकर नाना प्रकार की राजनीतिक चर्चा करते। कमला अब केवल खद्दर पहनती और स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करती। यद्यपि वह अधिक पढ़ी-लिखी न थी, किंतु फिर भी हिंदी का उसे अच्छा ज्ञान था।

एक बार वह तीन-चार दिन तक घर ही न लौटी। जगत को रोष भी आया, और चिंता भी हुई। इधर महीने-भर से उसकी और कमला की बातचीत भी न हुई थी। सरला भी सुखी थी—एक तो वह पति पर श्रद्धा रखती थी, और दूसरे, उसने अब तक समझ न पाया था कि आख़िर कमला है कौन, और उसका उसके पति से क्या संबंध है? सरला स्वभावतः भोली थी, और पति से डरती थी, अतएव उसे कुछ पूछने का साहस भी न हुआ।

तीसरे दिन सवेरे जब कमला घर लौटी, तो जगत उस समय हाथ-मुँह धो रहा था। कमला धूल से भरी हुई थी, और परेशान-सी मालूम पड़ रही थी।

जगत हाथ-मुँह धोकर कमला के कमरे में पहुँचा, और बोला—"तुम तो हम लोगों को परेशानी में डाल देती हो कमला। कहाँ चली गई थीं?"

कमला अपने कपड़े सँभाल रही थी, बोली—"ज़रा देहात गई थी। एक राजनीतिक कॉन्फ्रेंस थी।"

कुछ देर चुप रहकर जगत बोला—"किंतु यह बात ठीक नहीं है कमला। इस प्रकार बिना कहे-सुने कहीं जाना क्या उचित है तुम्हारे लिये ?"

कमला फ़ौरन बोल उठी—"जब काम होगा, तो जाना ही पड़ेगा। मैं इसमें किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं समझती।"

जगत चुप हो गया। कमला बोली—"मैंने जो रास्ता अपने लिये चुना है, वह निंदनीय नहीं, जो कोई उस पर टीका-टिप्पणी करे।"

धीरे से जगत बोला—"तुमने जिस इच्छा से भी यह मार्ग चुना हो; किंतु मैं बिना कहे नहीं रह सकता कि यह संसार है। यहाँ बहुत सोच-समझकर चलना पड़ता है। तुम जिस मार्ग पर जा रही हो, वह अनुकरणीय और आदर्श-युक्त होने के साथ-ही-साथ ख़तरे से भी ख़ाली नहीं है, विशेष तौर से स्त्रियों के लिये। तुम्हारी-जैसी युवतियों के लिये......"

बात काटकर कमला बोल उठी—"आप समझ लें कि मैंने बहुत सोच-समझकर इस ओर क़दम बढ़ाया है। इस विषय में कुछ भी बहस नहीं करना चाहती। मैं अपनी कठिनाइयाँ भी जानती हूँ, किंतु उनको सहन करने के लिये मैंने अपने को प्रस्तुत भी कर लिया है।"

जगत बोल उठा—"किंतु इसमें मेरे लिये भी तो बदनामी की बात है।"

कमला बोल उठी—"यह बात मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। मैंने आपसे घर में स्थान देने की प्रार्थना की थी, आपकी अभिभावुकता मैंने ग्रहण नहीं की।"

जगत और अधिक विवाद न करना चाहता था। वह चुपचाप कमरे के बाहर जाने लगा। कमला बोली—"और सुनिए, यदि मेरे यहाँ रहने से आपको किसी प्रकार का कष्ट होता हो, तो मैं जा सकती हूँ। मैंने अपना पैर धरने का स्थान बना लिया है।"

जगत उसके मुँह की ओर देखने लगा। कमला अपना काम करने लगी। जगत धीरे से कमरे के बाहर हो गया।

अपने कमरे में जाकर जगत लेट गया, और सोचने लगा—आखिर मैं इस स्त्री से इतना डरता क्यों हूँ? यह मन-माना करे, और मैं बोलूँ भी नहीं। आखिर फिर किया क्या जाय? मैं तो इसे घर में, हृदय में—सभी जगह—स्थान देने को तैयार हूँ, किंतु यह तो बात भी नहीं करती इस विषय में। मेरे जीवन की यह विचित्र घटना है। सरला, भोली-भाली सरला तो कदाचित् यह भेद जानने पर भी उसके साथ रहना स्वीकार कर लेगी, किंतु इसके तो मिजाज ही नहीं मिलते। यह भी खूब है।

और तभी सरला चाय लेकर आ गई।

दिन-भर अपने कमरे में पड़े रहने के बाद जब जगत शाम के वक्त बाहर जाने लगा, तो दरवाजे के पास ही उसे दो

खद्दरधारी मिले। एक ने जगत को नमस्कार करते हुए कहा—'भाभीजी हैं घर में ?"

"मुझे नहीं मालूम"—कहता हुआ जगत बेरुखाई के साथ आगे बढ़ गया।

उसके हृदय में वेदना जाग्रत् थी।

× × ×

किंतु कमला के हृदय में जगत के लिये कदाचित् सहानुभूति न थी। वह बार-बार सोचती कि आखिर उनका अपराध क्या है, किंतु उसकी समझ में न आता कि पति के प्रति उसके हृदय में जो इतना बड़ा रोष दिखलाई पड़ता है, उसका कारण क्या है ? पहली बार सरला को अपने पति के घर में देखकर उसका जी रोष, क्रोध और क्षोभ से भर गया था, किंतु धीरे-धीरे वह कम हो गया। सरला को वह अब बिलकुल निर्दोष समझने लगी थी; किंतु फिर भी पति के प्रति उसका यह रोष क्यों ?

प्राय: हम जब किसी वस्तु को अपने ही दोष से खो देते हैं, तो उसे दूसरे के अधिकार में देखकर हम स्वभावत: कुछ उद्विग्न-से हो जाते हैं। मानव-स्वभाव की यह कमजोरी हमको अपना दोष देखने की अपेक्षा उस वस्तु के ग्राहक को ही अपना शत्रु समझने की आदी है। कमला जगत के दोष से नहीं गई, और न जगत ने उसके साथ कभी दुर्व्यवहार ही किया, किंतु फिर कमला का रोष उस पर क्यों ? कदाचित्

कमला के हृदय पर जगत के दूसरे विवाह का गहरा धक्का लगा, किंतु यह अनिवार्य था। जगत् तो उसे मृत समझ चुका था। कमला यदि चाहती, तो सरला के साथ रहकर अपना स्थान प्राप्त कर सकती थी, किंतु कदाचित् उसने इसे उचित न समझकर ही दूसरा मार्ग ग्रहण किया। वह जगत को दोषी न समझते हुए भी उसकी ओर से उदासीन है; परिस्थितियों पर उत्तरदायित्व रखते हुए भी उसके हृदय में जो बवंडर पैदा हो गया है, उसे वह कदाचित् दबा नहीं पाती। उसके आगे अंधकार है, और वह नहीं जानती कि उसे किस प्रकार दूर किया जाय। वह मानिनी है, और अपनी इसी अकड़ में वह आज लक्ष्य-भ्रष्ट है। जिस मार्ग पर वह चल रही है, वह उसे किधर ले जायगा, इसका उसे स्वयं ज्ञान नहीं। वह तो चल रही है।

आगे भी उसका यही क्रम जारी रहा। वह प्रायः काफी रात गए लौटती; कभी भोजन के समय पर पहुँचती, और कभी दिन-दिन-भर उसका भोजन रक्खा रहता। जगत सभी कुछ देखता, सुनता, किंतु मुँह बनाकर रह जाता।

एक दिन सरला कह बैठी—"बहनजी तो भोजन भी समय पर नहीं कर लेतीं। दिन-दिन-भर पड़ा रहता है।"

जगत कुछ उद्विग्न-सा था, बोला—"तो मैं क्या करूँ?"

सरला चुप रह गई। जगत ने अपने रूखे व्यवहार को

समझा, बोला—"उनसे पूछ लो। यदि भोजन न करना हो, तो व्यर्थ क्यों अन्न बरबाद किया जाय।"

सरला कुछ बोली नहीं।

× × ×

शाम को उसी दिनवाले खद्दरधारी नवयुवक ने आकर जगत् बाबू को एक पत्र दिया। पत्र में कमला ने अपना सामान मँगाया था।

कुछ देर सोचने के बाद जगत ने कमला का सामान ले जाने की अनुमति दे दी।

इस व्यक्ति के प्रति न-जाने क्यों जगत के हृदय में एक ईर्ष्या-सी पैदा हो गई थी।

(५)

जगत के राजनीतिक विचार कुछ और ही प्रकार के थे। वह जन-आंदोलन के विरुद्ध न था, किंतु फिर भी कांग्रेस-आंदोलन से उसे कोई सहानुभूति न थी। उसका कहना था कि कार्य-कर्ताओं में नैतिक दृढ़ता का अभाव है। वह नगर के बहुत-से नेताओं को व्यक्तिगत रूप से जानता था, और उनके विषय में जगत के विचार कुछ अधिक अच्छे न थे। विशेष रूप से उसे स्त्रियों का उसमें भाग लेना क़तई पसंद न था। इन्हीं नेताओं ने जगत को 'टोडी बच्चा' या देश-द्रोही-सा प्रसिद्ध कर रक्खा था। नगर के जितने सरकारी अधिकारी थे, जगत का प्रायः सबसे मेल था—सभी के यहाँ आना-जाना था। नगर के डिपुटी सुपरिंटेंडेंट पुलिस पं० आत्माराम तो उसके घर के-जैसे व्यक्ति थे। यही कारण था कि कांग्रेसी नेता जगत को भी सरकारी आदमी समझते थे। कमला का इस प्रकार इन लोगों के दल में जाना जगत को इन्हीं कारणों से न भाया था। कई बार महिला कार्यकर्ताओं ने सरला को अपनी ओर खींचना चाहा, किंतु पति की इच्छा न होने के कारण सरला ने उसे स्वीकार नहीं किया।

जब कमला इस प्रकार चली गई, तो उसे बड़ा कष्ट हुआ। एक बार तो उसके जी में आया कि वह आत्माराम से मिलकर उस खद्दरधारी नवयुवक तथा उसके साथियों को ठीक करवा दे, किंतु वह बहुत कुछ सोच-समझकर चुप रहा। वह जानता था कि कमला का स्वभाव कितना ज़िद्दी है, और वह कितने उद्दंड स्वभाव की है।

जगत को यह चिंता अवश्य हुई कि आखिर वह रहती कहाँ है? उसे घर से गए लगभग एक सप्ताह हो गया था, किंतु वह एक बार भी घर न आई थी। जगत ने सोचा, आखिर वह किस तरह इस बात का पता लगाए।

शाम को वह आत्माराम से मिलने के लिये रवाना हुआ। चाँदनी चौक में पहुँचने पर उसने कमला को देखा, वह एक स्त्री के साथ थी। साथ में एक पुरुष भी था, जो आगे-आगे चल रहा था। जगत उन्हें देखकर ठिठका। तीनो एक दूकान के अंदर घुसे।

जगत बाहर ही टहलता रहा। जब तीनो बाहर निकले, तो जगत कमला के पास पहुँचकर बोला—"क्या तुम सदा के लिये घर छोड़ आई' कमला?"

कमला—"काम पड़ने पर आ सकती हूँ। ऐसे मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है।"

दोनो स्त्री-पुरुष आगे बढ़ गए थे, किंतु कमला को इस प्रकार एक पुरुष से बात करते देखकर स्त्री वहीं आ गई। कमला ने

उसे अपनी ओर आते देखकर कहा—"ठहरो बहन, मैं अभी आई।"

स्त्री ने घूरकर जगत की ओर देखा, और फिर अपने साथी पुरुष के पास पहुँचकर खड़ी हो गई।

कमला ने जल्दी-सी प्रकट करते हुए कहा—"अच्छा, कल आपसे मिलूँगी।"

जगत को बुरा मालूम पड़ा, उसने कहा—"तुमको अभी ठहरना पड़ेगा कमला। इन लोगों को जाने दो।"

कमला इधर-उधर करने लगी। जगत ने कहा—"क्या इन लोगों के सामने तुम्हें मुझसे बात करने में लज्जा आ रही है?"

कमला कुछ खिसियाकर बोली—"यह बात नहीं है। साथ में मंत्रीजी हैं, उन्हें देर हो जायगी।"

जगत गंभीर होकर बोला—"तो क्या अब मंत्रीजी का तुम पर मेरी अपेक्षा अधिक अधिकार है?"

कमला बोली—"ऐसी बात नहीं है। अच्छा, कल जरूर आऊँगी।"

वह चलने को उद्यत हुई। जगत खिसियाकर बोला—"तो फिर आओ, तुम्हारी मर्जी हो आना और तुम्हारी मर्जी......"

कमला चल दी। जगत अपना-सा मुँह लेकर धीरे-से दूसरी ओर चल दिया।

उस दिन रात-भर जगत को नींद नहीं आई। उसने

सोचा—ऐसी हो गई कमला ! मुझसे बात करने में इतनी लज्जा उन मंत्रीजी के सामने ? आखिर तो वह मेरी स्त्री है न ? क्या उसका कर्तव्य......मगर मुझे क्या करना। जब ठोकर लगेगी, तो बुद्धि ठिकाने आ जायगी। लेकिन........

तीसरे दिन कमला आई। जगत ने देखा, वह सुव्यवस्थित रूप से श्वेत खद्दर की साड़ी पहने हुए, हाथ में चमड़े का बेग लिए तथा मुस्किराती-सी थी। बोली—"बड़ी मुश्किल से आ पाई हूँ। कल देहात की एक सभा में भाषण देना था, अतएव रात के ९ बजे लौटी। आज भी मंत्रीजी मुझे बाहर लिए जा रहे थे, किंतु मैं गई नहीं।"

न-जाने क्यों 'मंत्रीजी' का नाम सुनकर जगत के तन में आग-सी लग गई। वह मुँह बनाकर बोला—"मुझे ये बातें पसंद नहीं हैं कमला।

कमला कुछ विरक्त-सी होकर बोली—"किंतु मेरे लिये सिवा इसके और चारा ही क्या था ? देश-सेवा का मार्ग तो तुम्हें सदैव बुरा ही लगा है।"

जगत को यह व्यंग्य बुरा लगा। वह थोड़ी देर चुप रहकर बोला—"ख़ैर, तुम्हारा जो जी चाहे, वह करो, किंतु इस 'मंत्रीजी' से सावधान रहना।"

कमला ने कुछ मर्माहत-सी होकर कहा—"इससे आपका मतलब..."

किंचित् क्रोध के साथ जगत बोला—"इन हरामजादों से

ईश्वर बचाए। मेरा वश चले, तो मैं पाँच सौ जूते लगाऊँ और......"

कमला उठ खड़ी हुई, और बोली—"मैं इस प्रकार की बातें करने नहीं आई हूँ। किसी भी व्यक्ति को इस प्रकार दुर्वचन कहना......"

बात काटकर जगत बोला—"इन लोगों को बिगाड़ने के लिये भले ही घर की स्त्रियाँ मिलती हैं। ऐसे व्यक्तियों को तो पुलिस के हवाले......"

कमला बोल उठी—"पुलिस की क्या मजाल, जो मंत्री-जी के हाथ भी लगा सके। ऐसा करवाकर देख लीजिए न ?"

झगड़ा बढ़ता देखकर जगत बोला—"तो क्या फिर आज मुझसे लड़ने आई हो कमला ?"

कमला स्फुट स्वर से बोली—"आप ही लड़ाई की बातें करते हैं। आप भली भाँति समझ लें कि मैं मंत्रीजी के विषय में एक बात भी सहन करनेवाली नहीं हूँ। आज आपके स्थान पर यदि कोई दूसरा होता, तो मैं जान पर खेल जाती। अच्छा, अब मैं जा रही हूँ।"

कमला चल दी। जगत आश्चर्य से उसका मुँह देखता रह गया।

सरला कमरे के बाहर खड़ी होकर सब कुछ सुन रही थी। कमला के चले जाने के बाद वह धीरे से पति के पास आकर

खड़ी हो गई, और बोली—"जाने दीजिए, आपको बीच में पड़ने से लाभ ?"

जगत चुप रहा। सरला बोली—"भोजन लाऊँ ?"

"मुझे भूख नहीं है।"

---

(६)

कमला आगे बढ़ती गई। अब वह नगर की एक प्रसिद्ध नेत्री हो उठी थी। महिलाओं का संगठन करती, खद्दर का प्रचार करती तथा अपार जन-समूह में दहाड़कर भाषण देती। यद्यपि वह पढ़ी-लिखी अधिक न थी, किंतु फिर भी नगर-कांग्रेस-कमेटी के मंत्री श्रीव्रजकिशोर की सहायता से उसने राजनीति का अच्छा-खासा अध्ययन कर डाला था। इधर कुछ दिनों से वह अँगरेज़ी भी पढ़ रही थी। मंत्रीजी ने अपने घर के पास ही ५) मासिक का एक मकान भी ले दिया था। कमला उसी में रहकर सबेरे दो घंटे तक चर्खा चलाती तथा सिलाई आदि का कार्य करके अपनी जीविका-भर अर्जित कर लेती। थोड़ी-बहुत सहायता उसे कांग्रेस-कमेटी से भी मिल जाती थी।

पं० व्रजकिशोर उन नवयुवकों में से थे, जो देश की पुकार पर कॉलेज छोड़कर स्वातंत्र्य-संग्राम में कूद पड़े थे। आंदोलन में कसकर भाग लिया, अपने कार्य से आगेवालों को पीछे कर दिया, जेल गए, यातनाएँ सहीं, और अंत में खरे तपस्वी की भाँति नगर के एकच्छत्र नेता हो गए। पिता संपन्न एवं सुशिक्षित थे। उन्हें पुत्र का यह कार्य अधिक पसंद न आया।

उन्होंने पुत्र को बहुत कुछ समझाया, माता ने दुलार की रस्सी से पीछे खींचना चाहा, नवपरिणीता पत्नी गिरिजा ने करुणा-भरी दृष्टि से उनकी ओर बार-बार देखा, किंतु सब व्यर्थ हुआ !

इस समय व्रजकिशोर नगर-कांग्रेस के मंत्री हैं। अपनी जीविका मासिक-पत्रों में कुछ लिखकर तथा कुछ छात्रों को पढ़ाकर येन-केन प्रकारेण अर्जित करते हैं। गिरिजा भी पति के रंग में रँग चुकी है, अतएव उन्हीं के पास रहती है। व्रजकिशोर सीधे-सादे, मनस्वी, आत्माभिमानी तथा कोमल-स्वभाव के हैं। अपने जीवन में उन्होंने बहुतों को आगे बढ़ाया तथा राजनीतिक जीवन प्रदान किया। राजनीति की पाठशाला में वह गांधीवाद के विद्यार्थी हैं, और उन्हीं को देश का एक-मात्र नेता समझते हैं। मार्क्सवाद, साम्यवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद तथा इस प्रकार के अनेक वादों की आँधियाँ आईं, किंतु व्रजकिशोर अचल और अटल रहे।

ऐसे दृढ़, संयमी और सिद्धांतवादी पुरुष के संपर्क में आकर कमला क्यों न नतमस्तक हो जाती? क्यों न आगे बढ़ जाती? संसार कुछ भी कहे, इस बात की उसे चिंता न थी। व्रजकिशोर के संपर्क में आकर उसमें दृढ़ता, नम्रता और आत्मविश्वास का प्रारंभ हो चुका था।

किंतु संसार का दृष्टिकोण ही विचित्र है। व्रजकिशोर का आवश्यकता से अधिक झुकाव कमला की ओर देखकर लोगों

के कान खड़े हुए, आँखें तिरछी हुईं तथा जिह्वाओं ने मचलना शुरू किया। ब्रजकिशोर जवान, सुंदर, प्रतिष्ठित, नेता तथा स्वस्थ ; कमला स्वस्थ, भरे हुए शरीर की, सुंदर, गौरवर्णा की तथा नवयुवती। जिस समय वह श्वेत खद्दर की साड़ी पहने हुए बाहर निकलती, लोगों की आँखें बरबस उसकी ओर घूम जातीं। उसका गठा हुआ शरीर, चमकता हुआ चेहरा, गौरवर्ण किसको अपनी ओर आकर्षित न कर लेता था। और लोगों ने उसके निकट आने की तथा बात करने की चेष्टा की, किंतु कमला कम बोलने की आदी थी, तथा लोगों की आँखें पढ़ लेने की कला जानती थी। इस श्रेणी के लोगों ने ईर्ष्या-वश मंत्रीजी को बदनाम करने की भरपूर कोशिश की। लोग यह भी जानने की चेष्टा करते कि आखिर वह कौन है ? इस नगर में कैसे आ गई, और मंत्रीजी से उसकी कब की जान-पहचान है ?

कमला ने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि वह काशी की रहनेवाली है, पति और पिता उसकी राजनीतिक प्रगति में बाधक थे, अतएव वह अपने संबंधी जगत बाबू के यहाँ चली आई थी। जिस समय वह मंत्रीजी के निकट आई, उस समय उनकी स्त्री गिरिजा ने उसका स्वागत किया, और बहन के स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। किंतु धीरे-धीरे उसे अपनी ग़लती अनुभव हुई। उसने देखा, उसके पति उसकी अपेक्षा कमला का अधिक सम्मान करते हैं, स्नेह करते हैं तथा उसकी

उन्नति में आवश्यकता से अधिक क्रियाशील हैं। कहना असंगत न होगा कि गिरिजा अपने पति तथा कमला, दोनों ही; को शंकित दृष्टि से देखने लगी थी। पति तथा कमला के सामने उसे कुछ बोलने का साहस न होता था, किंतु छुक-छिपकर वह उनकी गति-विधि पर अपनी दृष्टि रखती। वह यह स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगी थी कि कमला ही के कारण राजनीतिक क्षेत्र में उसको आशातीत सफलता नहीं मिल रही है। पति भी इस ओर अधिक प्रयत्नशील नहीं हैं। किंतु वह रही मौन........

एक दिन वह पति से कह बैठी—"ये जगत बाबू कौन हैं?"

ब्रजकिशोर बोले—"कदाचित् कमला के संबंधी हैं। कमला जब निराश्रित होकर आई था, तो उन्हीं ने आश्रय दिया था। आदमी सज्जन हैं।"

कुछ मुँह बनाकर गिरिजा बोली—"आप तो सभी को सज्जन समझ लेते हैं। उस दिन मार्ग में कमला बहनजी से उनका बात करने का ढंग मुझे जरा कम पसंद आया।"

ब्रजकिशोर जरा हँसकर बोले—"किंतु हमको इस पर टीका-टिप्पणी करने का क्या अधिकार है गिरिजा? जब कमला उनसे बात करती है, तो वह सज्जन ही होंगे। कमला का तो स्वभाव ही किसी से बात करने का नहीं है।"

कमला की अवांछित प्रशंसा से गिरिजा मन में कुछ कुढ़-

सी गई, किंतु बोली—"मेरा अभिप्राय उन्हें बुरा कहने का नहीं है। उस दिन कदाचित् कमला बहन उनसे बात भी न करना चाहती थीं। वह तो मानों जबरदस्ती बात कर रहे थे।"

ब्रजकिशोर धीरे-से बोले—"हमको इन सब बातों से क्या मतलब ? कमला की—या किसी की भी—स्वतंत्रता में बाधक होनेवाले हम कौन ? यह तो उनकी अपनी बात है। हम किसी को अच्छा-बुरा क्यों कहें ?"

गिरिजा चुप हो गई। थोड़ी देर बाद ब्रजकिशोर बोले—"उनका परस्पर जो कुछ भी संबंध हो, उसे न तो हम लोग जानते ही हैं, और न हमको जानने की इच्छा ही होनी चाहिए। हमारी आँखें तो व्यक्ति के गुणों पर जाना चाहिए, और नहीं, वैसे तो गुण-दोष किस में नहीं होते ? दोष क्या मुझमें नहीं हैं ?"

गिरिजा मन-ही-मन में बोली—"और इसी आवरण में तो आप अपने दोषों को छिपाना चाहते हैं।" प्रकाश्य में वह चुप रही।

ब्रजकिशोर बोले—"भोजन मिलेगा या यों ही कोरी बातों से पेट भर दोगी ? जल्दी खाना लाओ। आठ बजे मीटिंग में जाना है।"

गिरिजा थोड़ा-सा आश्चर्य प्रकट करते हुए बोली—"आज कौन-सी मीटिंग है ?"

थोड़ा चुप होकर ब्रजकिशोर बोले—"आज की मीटिंग तो

बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। आगामी म्युनिसिपल-चुनाव के लिये उम्मेदवारों के नाम तय करना है।"

गिरिजा भोजन लेने चली गई। ब्रजकिशोर मेज के पास कुरसी खिसकाकर बैठ गए।

वह भोजन लेकर आई। ब्रजकिशोर खाते-खाते बोले—"तुम भी खा लो न ?"

गिरिजा बोली—"अभी भूख नहीं है।"

ब्रजकिशोर बोले—"बड़ा झंझट का विषय है आज का। संभव है, लौटने में काफी देर हो जाय।"

थोड़ी देर चुप रहकर गिरिजा बोली—किस-किसके चुने जाने की उम्मीद है ?"

ब्रजकिशोर पानी का गिलास मेज पर रखते हुए बोले—"अभी कुछ ठीक नहीं है। बहुतों के आवेदन पत्र आये हुए हैं।"

गिरिजा बोली—"लोग डटकर मुकाबला करेंगे। अपने वार्ड से कौन खड़ा होगा ?"

कुछ सोचते हुए ब्रजकिशोर बोले—"लोग मुझे ही खड़े होने पर जोर दे रहे हैं, किंतु मैंने न खड़े होने का निश्चय कर लिया है।"

गिरिजा बोली—"क्यों ?"

ब्रजकिशोर ने कहा—"मैं इन सब झंझटों में नहीं फँसना चाहता।"

गिरिजा चुप हो रही। व्रजकिशोर बोले—"सोचता हूँ, कमला को खड़ा कर दूँ।"

गिरिजा के दिल पर साँप-सा लोट गया। वह समझती थी कि इस बार म्युनिसिपल-बोर्ड में चुना जाना निश्चित है। वह बोली—"ठीक है। यह सब आप ही के हाथ में है, चाहे जिसे खड़ा करें।"

व्रजकिशोर ने कहा—"कमला इसके लिये बहुत ही उपयुक्त रहेगी।"

गिरिजा चुप रही। उसने इस सीट के लिये अपनी भी अर्ज़ी पहले ही भेज दी थी, किंतु उसने कुछ कहा नहीं।

कपड़े पहनकर जब व्रजकिशोर तैयार हुए, तो उन्होंने कहा—"तुम भी चलती हो?"

कुछ मुँह बनाकर गिरिजा बोली—"मैं नहीं जाऊँगी।"

व्रजकिशोर ने उसके मुँह की ओर देखा, और फिर चले गए।

(७)

नगर में म्युनिसिपल-बोर्ड का यह पहला ही चुनाव था, जिसमें कांग्रेस अपने उम्मेदवार खड़े कर रही थी। इस प्रकार का पुरस्कार बँटता देख साधारण-से-साधारण कांग्रेसमैन का दिल ललचा गया। ३२ सीटों के लिये लगभग ३०० अर्जियाँ मंत्रीजी के पास आ चुकी थीं। जिस वार्ड में ब्रजकिशोर रहते थे, उसमें भी लगभग २५-२६ अर्जियाँ थीं। आज रात को इसी विषय को लेकर कमेटी की बैठक में गरमागरम बहस छिड़ी हुई थी। कमेटी के बहुत-से सदस्यों की भी अर्जियाँ थीं।

पहले ब्रजकिशोर के वार्ड का ही मसला पेश हुआ। कमेटी के अध्यक्ष लाला ओंकारमल ने कहा—"मेरी राय में तो मंत्रीजी को ही यह चुनाव लड़ना चाहिए।"

ब्रजकिशोर बोले—"न-न-न, मैं क़तई इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। दूसरी बात यह है कि मुझे तो शहर-भर का चुनाव लड़ना है, अतएव मैं अपने को किसी एक विशेष वार्ड में फँसाना नहीं चाहता।"

ओंकारमल बोल उठे—"आपका चुनाव मैं लड़ लूँगा, आप चिंता न करें।"

ब्रजकिशोर बोले—"मैं आपको भी नहीं छोड़ सकता। आपका मेरे साथ रहना बड़ा ही आवश्यक होगा।"

ओंकारमल चुप हो गए। ब्रजकिशोर बोले—"यदि आप लोग उचित समझें, तो मेरा प्रस्ताव यह है कि कमलादेवी को इस वार्ड से लड़ाया जाय।"

सब लोग चुप रहे। ब्रजकिशोर बोले—"क्या राय है आप लोगों की?"

एक सदस्य ने कहा—"आप पहले उन सब लोगों के नाम पढ़ दीजिए, जिन्होंने अर्जियाँ भेजी हैं।"

ओंकारनाथ ने कहा—"अवश्य।"

ब्रजकिशोर ने ऑफिस-इंचार्ज श्रीराम से फाइल माँगी।

ब्रजकिशोर ने अर्जियाँ पढ़ना शुरू कीं। तीसरी ही अर्जी गिरिजा की थी। यह देखकर ब्रजकिशोर को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पं० रामचंद्र ने कहा—"गिरिजादेवी को ही क्यों न चांस दिया जाय।"

ब्रजकिशोर सिर खुजलाते हुए बोले—"मेरी राय में......"

ओंकारमल बोल उठे—"पहले सबका नाम पढ़ दीजिए।"

ब्रजकिशोर ने सब नाम पढ़ दिए।

ओंकारमल ने कहा—"चूँकि कमलादेवी ने अर्जी ही नहीं दी है, अतएव गिरिजादेवी ही को चांस क्यों न दिया जाय।"

व्रजकिशोर बोले—"मगर कमलादेवी के सफल होने की अधिक आशा है।"

पं० रामचंद्र बोल उठे—"सफलता तो कांग्रेस को मिलेगी, चाहे जो खड़ा हो जाय।"

पुराने कार्यकर्ता शिवकृष्ण ने कहा—"मगर व्यक्तित्व का भी बल होता है। मैं समझता हूँ, कमलादेवी गिरिजाजी से अधिक उपयुक्त होंगी।"

भगवतीप्रसाद ने कहा—"गिरिजादेवी भी कमज़ोर नहीं हैं। जिस व्यक्ति ने अर्ज़ी दी है, उसे छोड़कर दूसरे को स्थान देना तो अन्याय है। कमलादेवी ने अर्ज़ी क्यों नहीं दी?"

शिवकृष्ण बोले—"यह साधारण बात है। हमको तो योग्यता ही को सर्वोपरि रखना है।"

भगवतीप्रसाद ज़ोर से बोले—"गिरिजादेवी को अयोग्य कहना आपको शोभा नहीं देता।"

सैयदहुसेन ने कहा—"कमलाजी ही अधिक योग्य हैं।"

एक आवाज़ आई—"गिरिजाजी ज्यादा योग्य हैं। उन्हीं को चुना जाय।"

'तू-तू, मैं-मैं' बढ़ने लगी। ओंकारमलजी ने कहा—"व्रज-किशोरजी, आप मेरी बात मानकर गिरिजादेवी को ही चुनें, अन्यथा पार्टीबंदी से हमारी हार हो जायगी।"

व्रजकिशोर चुप थे। उन्हें बार-बार गिरिजा पर क्रोध आ रहा था। वह जानते थे कि गिरिजा में कितनी योग्यता है; वह

यह भी जानते थे कि जनता कमला ही को पसंद करेगी। वह बोले—"ओंकारमलजी, मैं बहुत ही गंभीर होकर कह रहा हूँ कि आप लोग ग़लती कर रहे हैं।"

भगवतीप्रसाद ने चिल्लाकर कहा—"वोट ले लिए जायँ।"

कई आवाज़ें आईं—"वोट लिए जायँ।"

सभापति ने वोट लेने का निर्णय दे दिया। कमला के पक्ष में ८ और गिरिजा के पक्ष में ६ वोट आए।

बहुमत से गिरिजादेवी का नाम घोषित कर दिया गया।

उदास भाव से ब्रजकिशोर बोले—"किंतु गिरिजादेवी से भी पूछ लिया जाय।"

भगवतीप्रसाद बोले—"वह राजी हैं। तभी तो अर्जी दी है।"

× × ×

ब्रजकिशोर लगभग ११ बजे घर पहुँचे। उनकी गंभीर आकृति देखकर गिरजा ने कहा—"क्या तय हुआ?"

उसी गंभीर मुद्रा में ब्रजकिशोर ने कहा—"बधाई आपको! आप चुन ली गईं।"

अंदर से प्रसन्न होकर गिरिजा बोली—"मुझे क्यों चुनवा दिया?"

ब्रजकिशोर बोले—"आपकी अर्जी पर विचार हुआ, और आपके समर्थकों ने कमला के स्थान पर आप ही को अधिक वोट देकर चुन लिया।"

प्रसन्न मन से गिरिजा बोली—"मैं चुनाव कैसे लड़ूँगी ?"

ब्रजकिशोर चारपाई पर लेटते हुए बोले—"यह तुम्हारा काम है। जैसे सब चुनाव लड़ते हैं, वैसे ही आप भी लड़ लेना।"

गिरिजा समझ गई कि कमला की हार से इन्हें बड़ा दुःख हुआ है। वह मन-ही-मन बोली—"तो मैं क्या करूँ ? मेरा नाम चुने जाने से इन्हें क्यों अप्रसन्नता होने लगी ।"

सबेरे ही कमेटी के कई सदस्य गिरिजा को बधाई देने आ पहुँचे।

गिरिजा ने प्रसन्न होकर कहा—"आप लोगों ने मुझे व्यर्थ ही चुना। मैं इस योग्य नहीं हूँ।"

भगवतीप्रसाद बोले—"आप क्यों डर रही हैं ? चुनाव तो हम लोग लड़ेंगे ?"

इतने में अंदर से आ गए ब्रजकिशोर। ओंकारमल ने हँसते हुए कहा—"आप को भी बधाई मंत्रीजी। अब जरा जुट जाइए।"

सूखी हँसी हँसकर ब्रजकिशोर चुप हो गए।

ये लोग जब लौटे, तो मार्ग में ओंकारमल बोले—"कमला का न चुना जाना ब्रजकिशोर को बहुत बुरा लगा है।"

भगवतीप्रसाद बोले—"हमने तो उनकी ही पत्नी को चुना है। इसमें उन्हें बुरा तो न लगना चाहिए।"

हँसकर धीरे से भगवती बोला—"किंतु कमला तो उन्हें पत्नी से अधिक प्रिय है।"

सभी लोग मुस्किरा दिए।

इधर सबके चले जाने के बाद गिरिजा बोली—"कदाचित आपको मेरा चुना जाना अधिक अच्छा नहीं लगा?"

व्रजकिशोर बोले—"अवश्य। जब मैं स्वयं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता था, तो तुम्हारे लिये कैसे सहमत हो जाता? हाँ, यदि स्वयं तुम चुनाव लड़ने के लिये तैयार हो, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

गिरिजा बोली—"तो क्या आप न लड़ेंगे मेरी तरफ से?"

व्रजकिशोर बोले—"मैं तुम्हारी उतनी ही सहायता कर सकूँगा, जितनी और उम्मेदवारों की।"

गिरिजा बोली—"तो क्या मैं अन्य उम्मेद्वारों के ही समान हूँ आपके लिये?"

व्रजकिशोर बोल उठे—"निश्चय ही।"

कुछ बिगड़कर गिरिजा बोली—"और यदि कमला खड़ी होती?"

इस प्रश्न के उत्तर के लिये व्रजकिशोर तैयार न थे, फिर भी बोले—"यह दूसरी बात है गिरिजा। किंतु एक बात स्पष्ट है कि कमला बिना मुझसे पूछे 'खड़ी ही नहीं हो सकती थी। मै कमला को समझता हूँ।"

गिरिजा बोली—"क्या मैं पूछ सकती हूँ कि मेरी अपेक्षा आपका झुकाव कमला की ओर अधिक क्यों है ?"

ब्रजकिशोर बोल उठे—"क्योंकि मैं कमला की भी योग्यता समझता हूँ, और तुम्हारी भी।"

गिरिजा झल्लाकर चुप हो गई। ब्रजकिशोर बोले—"अर्जी देने के पहले तुम्हें मुझसे भी तो पूछना चाहिए था। तुम व्यक्तिगत रूप से खड़ी हुई हो, अतएव तुम्हीं को यह चुनाव लड़ना चाहिए। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि कमला बिना मुझसे पूछे कभी अर्जी नहीं दे सकती थी।"

गिरिजा बोली—"तो क्या फिर इसी ग़लती के लिये मेरी ताड़ना करते रहोगे ?"

ब्रजकिशोर बोले—"इसमें न तो कोई ताड़ना ही की बात है, और न मेरे अप्रसन्न होने की। यह बात अवश्य है कि तुम्हारी इस ग़लती से कमेटी में कल मेरी पोज़ीशन काफ़ी ख़राब हो गई।"

गिरिजा चुप थी। ब्रजकिशोर बोले—"कमेटी के सदस्यों ने भद्दे ढंग से मेरा डटकर विरोध किया। जीवन में पहली ही बार कमेटी में मेरी पराजय हुई है। यदि तुम्हारा प्रश्न न होता, तो मेरा इस्तीफ़ा अवश्यभावी था। तुम्हारा नाम आ जाने से कदाचित् मैं अपना कर्तव्य पूरा न कर सका।"

गिरिजा अपनी ग़लती अनुभव-सी कर रही थी। उदास होकर बोली—"तो फिर मैं चुनाव न लड़ूँगी। आप कमला बहन को ही खड़ा कीजिए।"

ब्रजकिशोर बोले—"अब मैं इस विषय में कुछ नहीं बोलना चाहता। तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।"

---

(८)

इधर सरकार भी उदासीन न थी। कांग्रेस को इस प्रकार तैयार देखकर जिलाधीश मि० टॉमसन ने 'जी-हुजूरों' को बँगले पर बुलाकर सलाह की।

ऑनरेरी मजिस्ट्रेट सुंदरलाल ने कहा—"मैंने तो कांग्रेस से लड़ना तय कर लिया है। वार्ड नं० ६ से मैं खड़ा हो रहा हूँ।"

मि० टॉमसन मुस्किराकर बोले—"आप तो प्रभावशाली व्यक्ति हैं। आपको कौन हरा सकता है? सरकार आपकी मदद करेगी।"

लक्षाधीश शंकरप्रसाद ने कहा—"मेरे वार्ड में तो कांग्रेस का प्रभाव शून्य के बराबर है। मैं चुनाव लड़ूँगा। मुझे भी सहायता मिले।"

आमंत्रितों में जगत बाबू भी थे।

जिलाधीश ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा—"जगत बाबू को ५ नंबर वार्ड से खड़ा होना चाहिए।"

कुछ सोचकर जगत बाबू बोले—"मुझे कोई इनकार नहीं है। सिर्फ कांग्रेस की हुल्लड़बाजी से डरता हूँ।"

मि० टॉमसन ने कहा—"अब डरें मत। हम हुल्लड़बाजी को डंडेबाजी से शांत कर देंगे। आप शौक से चुनाव लड़ें।"

जगत बाबू बोले—"मैं लड़ लूँगा।"

इस प्रकार सभी वार्डों से कांग्रेस से लोहा लेने के लिये सरकारी योद्धा खड़े हो गए। मि० टॉमसन ने खुश होते हुए कहा—"हम आप लोगों की जी-भरकर मदद करेंगे। आप लोग जिस प्रकार की सहायता माँगेंगे, पुलिस उसी प्रकार की सहायता आपको देगी। मैं अभी सुपरिंटेंडेंट पुलिस मि० रीड को फ़ोन किए देता हूँ।"

सभी लोग चले गए।

तीसरे दिन ऑनरेरी मजिस्ट्रेट मि० सुंदरलाल के बँगले पर सभी उम्मेदवारों की एक बैठक हुई, जिसमें भिन्न-भिन्न वार्डों से उम्मेदवारों के नाम तय कर दिए गए।

दूसरे दिन कचहरी में सभी का नामीनेशन हो गया।

× × ×

गिरिजा ने ओंकारमल से कहा—"ऐसी दशा में मैं अपना नाम वापस लेना चाहती हूँ।"

ओंकारमल ने कहा—"यह तो व्रजकिशोर की ज्यादती है। मैं आज उनसे बात करूँगा।"

गिरजा बोली—"मैं बात आगे बढ़ाना नहीं चाहती। मेरा चुनाव लड़ना किसी प्रकार भी संभव न होगा। आप कमलादेवी को ही चुनाव लड़ने दीजिए।"

कुछ सोचकर ओंकारमल बोले—"यह बात तो बड़ी बेजा है। कमलादेवी अभी चार दिन से इस नगर में काम

करने लगी हैं। आप हमारे नगर की पुरानी कार्यकर्त्री हैं। समझ में नहीं आता कि ब्रजकिशोर बाबू को क्या हो गया है ?"

गिरिजा ने और कुछ कहना उचित न समझा। ओंकारमलजी बोले—"मैं आपसे साफ़-साफ़ कह देता हूँ कि आप कमलादेवी से सावधान रहें। ब्रजकिशोरजी का संपर्क उनसे जिस तरह बढ़ रहा है, वह ठीक नहीं है।"

गिरिजा ने धीरे से कहा—"किंतु इसमें मैं क्या कर सकती हूँ। यह तो स्वयं उनके ही सोचने की बात है। अपना अच्छा-बुरा वह स्वयं समझ सकते हैं।"

ओंकारमल बोले—"उन्हें यहाँ आए अभी डेढ़-दो बरस से अधिक नहीं हुआ। जनता में इतनी जल्दी उनका प्रभाव हो गया—यह सब तो ब्रजकिशोर बाबू ही की बदौलत है न ? अभी चार दिन पहले (हँसकर) जगत बाबू की निगरानी में थीं। मैं तो सब कुछ जानता हूँ; मुझसे कुछ छिपा थोड़े ही है।"

गिरिजा बोली—"उन्हीं से लड़कर ही तो इन्होंने देश-भक्ति की चादर ओढ़ी है। मैंने स्वयं अपनी आँखों से इनकी हरकत देखी है। जगत बाबू मना रहे थे, और आप भाग रही थीं एक दिन।"

ओंकारमल बोले—"धोखा खायँगे एक दिन ब्रजकिशोर बाबू। मामूली औरत को इतना ऊपर चढ़ा दिया। भला

आपका और उसका मुक़ाबला ही क्या ? अगर ब्रजकिशोर बाबू मदद न करें, तो उसका जीतना भी कठिन हो जायगा।"

गिरिजा चुप रही। ओंकारमल बोले—"आप घबराएँ नहीं। यदि ब्रजकिशोर बाबू का मामला न होता, तो मैं अभी सारा भंडा फोड़ कर रख देता।"

(९)

नामीनेशन-पेपर दाखिल करने के बाद जगत बाबू को उसी वार्ड से कमला का नाम देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह घबरा गए। तो क्या कमला से टक्कर लेना होगा ?"

उनका चुनाव लड़ने का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया।

इधर कमला को जब मालूम हुआ, तो वह भी घबराई। उसने चाहा कि वह अपना नाम वापस ले ले, किंतु अब कोई उपाय न था। नामीनेशन की तारीख निकल चुकी थी। अपना नाम वापस लेने का अर्थ था कांग्रेस के प्रति ग़द्दारी।

जगत बाबू बरामदे में टहल-टहलकर आज यही बात सोच रहे थे। कभी वह सोचते कि सबसे अच्छा उपाय इस झंझट से बचने का यही है कि वह अपना नाम वापस ले लें। साथ ही वह भी सोचते कि इससे उनकी बदनामी होगी, और जिलाधीश भी नाराज़ होंगे। स्त्री के मुक़ाबले में यदि वह हार गए तो······

उन्हें रह-रहकर कमला पर गुस्सा आ रहा था। क्या कमला को ऐसा चाहिए था ? वह औरत तो ताल ठोककर मुझसे लड़ने को तैयार हो गई। और ये कांग्रेसवाले ? घर फोड़ने

में तो इन्हें कमाल हासिल है। तबियत होती है कि पुलिस से कहकर मंत्रीजी की हड्डी-पसली तुड़वा दूँ। बेशरम भी तो हैं; इन्हें पिटने में भी तो लाज नहीं आती। इन्हें मालूम था कि कमला मेरे घर में रहती थी···फिर···फिर··अब क्या···

कमला सामने आकर खड़ी हो गई। बनावटी हँसी हँसते हुए जगत बोले—"बहुत दिनों में फ़ुरसत मिली कमला ?"

आज कमला में कुछ पहले की-सी तेजी न थी। बोली—"आज कुछ ऐसी आवश्यकता ही आ पड़ी, जो आना पड़ा·······"

बात काटकर जगत ने कहा—"और अगर आज भी आवश्यकता न पड़ती, तो आना मुश्किल था। यही न ?"

कमला बोली—"मुझे बहुत घुमा-फिराकर बात करना नहीं आता। आज जिस आवश्यकता-वश मैं आई हूँ, उसे आप भली भाँति जानते हैं।"

जगत बाबू कुर्सी पर बैठ गए। कमला भी बैठ गई। जगत बाबू ज़रा गंभीर होकर बोले—"तब कहो, अब क्या कहना चाहती हो ?"

ज़रा रुककर कमला बोली—"मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूँ कि आप कांग्रेस से चुनाव न लड़ें।"

हँसकर जगत बोले—"कांग्रेस से या तुमसे कमला ?"

कमला बोली—"मैं क्या हूँ ? मुझे तो कांग्रेस ने ही खड़ा किया है।"

जगत बोले—"ये दो प्रश्न हैं मेरे लिये—एक तो कांग्रेस से लड़ना और दूसरे तुमसे। इन दोनों प्रश्नों में से तुम किस प्रश्न को लेकर मेरे पास आई हो?"

कमला निर्भीक होकर बोली—"मैं अपने और कांग्रेस में कोई भेद नहीं समझती, अतएव मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप कांग्रेस के विरोध में चुनाव न लड़ें।"

जगत बाबू आवश्यकता से अधिक गंभीर होकर बोले—"सुनो कमला, मैं कांग्रेस को अपना और देश का शत्रु समझता हूँ। कांग्रेस से ताल ठोककर लड़ूँगा, और उसे नीचा दिखाने की चेष्टा करूँगा।"

कमला आश्चर्य से पति का मुँह देखने लगी। वह जानती थी कि वह कांग्रेस से सहानुभूति नहीं रखते, किंतु उसे यह न मालूम था कि कांग्रेस से उनकी इतनी बड़ी शत्रुता है।

वह बोली—"और यदि मैं दूसरा प्रश्न आपके सामने लाऊँ, तो?"

मुस्किराकर जगत ने कहा—"इस पर मैं विचार कर सकता हूँ। प्रश्न यह है कि मुझे तुम्हारे मुक़ाबले में चुनाव लड़ना चाहिए था नहीं? मैं कहता हूँ, क्या यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है कि तुम मेरे मुक़ाबले में अपना नाम वापस ले लो?"

कमला ने पूछा—"ऐसा क्यों?"

जगत ने कहा—"पहली बात तो यह है कि स्त्री का स्थान

उसका घर है, राजनीति नहीं। यह पुरुषों का काम है कि राजनीतिक प्रगति में भाग लें। दूसरी बात यह है कि मेरे सम्मान के लिये भी तुम्हें अपना नाम वापस लेना चाहिए। ठीक कह रहा हूँ न कमला ?"

कमला बोली—"मैं तो आपसे पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं तो कांग्रेस द्वारा खड़ी की गई हूँ......"

बात काटकर जगत बोला—"तो फिर कांग्रेस से मेरा किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता। यदि तुम्हें कांग्रेस ने खड़ा किया है, तो मुझे भी एक महान् शक्तिशाली संस्था ने खड़ा किया है।"

कमला बोल उठी—"और वह महान् शक्तिशाली संस्था कदाचित् नौकरशाही है। यही न ?"

जगत बोला—"तुम बिलकुल ठीक कह रही हो कमला।"

कमला ने कहा—"तो यह कहो कि आप देश-द्रोहिता के मार्ग में क़दम रखने जा रहे हैं।"

हँसकर जगत बोला—"यह तो समय बतलाएगा कि मैं देश-द्रोही हूँ या तुम या तुम्हारी संस्था।"

कमला चुप हो गई। जगत ने हँसकर कहा—"मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ कमला कि तुम इतने ही थोड़े समय में राजनीति की पंडित हो गई हो। वास्तव में तुम्हारे मंत्रीजी गुणी व्यक्ति हैं।"

कमला पति का व्यंग्य समझ रही थी। वह उठकर खड़ी

हो गई। जगत बोला—"तो क्या चल दीं ? अब यहाँ बैठना भी बुरा लगता है क्या ?"

चलते हुए कमला ने कहा—"इस आत्मीयता की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती। केवल इतना कह देना चाहती हूँ कि इस प्रकार के व्यंग्यों से पारस्परिक संबंधों के बीच में जो खाई आ गई है, उसे और चौड़ा कर रहे हैं।"

जगत बोले—"तो क्या इस खाई को लुप्त करने का उपाय नहीं है ?"

जाते-जाते कमला बोली—"जब समय आएगा, तब देखा जायगा।"

वह चली गई। जगत ने सोचा—इतनी तेज़ी ! इसका दिमाग़ तो कांग्रेसवालों ने ख़राब कर रक्खा है। अच्छा, तो फिर इसका उपाय भी करना पड़ेगा।

इतने में सरला ने आकर कहा—"कमला बहन आई थी ?"

सूखी हँसी हँसकर जगत ने कहा—"हाँ, आई थीं। तुम्हें नहीं मालूम सरला कि वह चुनाव में मेरे विरुद्ध खड़ी हो रही है।"

सरल भाव से सरला ने कहा—"ऐसा क्यों कर रही हैं ?"

जगत ने कहा—"उनका मन। कांग्रेसवालों के बहकावे में आकर वह मुझसे ही अपनी ताक़त आज़माना चाहती है।"

कुछ सोचकर सरला बोली—"मैं भला इस विषय में क्या

कह सकती हूँ ? अच्छा हो, यदि आप उनके पति को इस संबंध में लिखें। वह तो कदाचित् आपके मित्र हैं ?"

जगत चुप रहा। थोड़ी देर बाद सरला बोली—"आपका और उनका परस्पर क्या व्यवहार है, यह मैं तो नहीं जानती। हाँ, आज इतना अवश्य कह सकती हूँ कि वह मुझे एक पहेली-सी जान पड़ीं।"

जगत के मुँह से निकला—"सचमुच यह सब कुछ पहेली हो-सी है सरला। अब मैं क्या कहूँ ?"

सरला पति का मुँह देखने लगी। जगत बोला—"और, यदि इस पहेली को पहेली ही रक्खा जाय, तो हमारे और तुम्हारे लिये हितकर ही रहेगा।"

थोड़ी देर चुप रहकर सरला ने कहा—"मैं क्या बात करूँ उनसे ?"

सिर हिलाते हुए जगत ने उत्तर दिया—"नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

(१०)

नगर में चुनाव की चहल-पहल ज़ोरों से प्रारंभ हो गई थी। कांग्रेस के भीषण प्रोपेगंडा और प्रचार से सरकारी उम्मेदवारों के पैर उखड़े जा रहे थे। जगत बाबू भी बड़े उत्साह और संलग्नता के साथ जुट गए। वह कांग्रेस को भी नीचा दिखलाना चाहते थे और कमला को भी। व्यय के लिये उन्होंने थैली का मुँह खोल दिया था। वोटरों पर सरकारी दबाव पड़ रहा था। छोटी श्रेणी के लोगों पर पुलिस प्रभाव डाल रही थी, और बड़ी श्रेणी के लोगों पर अधिकारी।

मगर कमला में अधिक उत्साह न था। वह नहीं जानती थी कि जगत बाबू ऐसा करने के लिये तैयार हो जायँगे। यद्यपि और लोग उसके चुनाव-कार्य को सुचारु रूप से चला रहे थे, किंतु फिर भी कमला में उमंग का अभाव था। जुलूस निकलते, सभाएँ की जातीं तथा उनमें जगत बाबू की आलोचना की जाती। उन्हें गद्दार कहकर धिक्कारा जाता। उनका मज़ाक़ उड़ाया जाता। लोग लंबी-लंबी स्पीचों में सब कुछ कह डालते, किंतु कमला किसी भी सभा में बोली नहीं। उसका हृदय जगत बाबू की आलोचना सुनकर काँप उठता।

जब शाम को बच्चों की टोलियाँ नारे लगाते हुए निकलतीं 'जगत बाबू ! हाय-हाय !' 'कांग्रेस-विरोधियों का नाश हो' तो उसका हृदय रो पड़ता। कभी-कभी उसकी तबियत होती थी कि वह जगत बाबू के पैरों पर जाकर लोट जाय, और उन्हें अपने आँसुओं से तर कर दे। किंतु ! इसमें रुकावट थी कांग्रेस की आज्ञा, लोक-भय तथा कर्तव्य-पालन की निष्ठा ! वह क्या करे ! वह क्या करे !!

एक दिन जगत बाबू का पुतला बनाकर उसका जनाजा निकाला गया, और उसे बीच चाँदनी चौक में 'हाय ! हाय !!' करके फूँक दिया गया ! कमला ने सुना, तो उसका सिर चक्कर खा गया, हृदय हाँफ उठा, तथा चेहरे की लाली जाती रही। उसी दिन शाम को उसने मंत्रीजी से कहा—"हाँ, इस प्रकार की बातें रोक दीजिए।"

मंत्रीजी ने गंभीर होकर कहा—"हाँ, इस प्रकार की बातें भद्दी अवश्य हैं, किंतु जनता को किस प्रकार रोका जाय ? पुलिस भी तो उन्हें भड़काती है।"

कमला बोली—"कुछ भी हो, किंतु इसे तो रोकना ही पड़ेगा। वे भी पुलिस को ज्यादती करने से रोकें।"

मंत्रीजी ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा हो, यदि हम लोग एक बार जगत बाबू से मिलकर बात कर लें।"

सोचकर कमला बोली—"मैं भी यही चाहती हूँ। मैं चलूँगी आपके साथ।"

मंत्रीजी ने कहा—"दस-पाँच आदमी साथ चलेंगे। संभव है, उन पर प्रभाव पड़े।"

कमला बोली—"जैसा आप ठीक समझें।"

उक्त निर्णय के अनुसार कांग्रेस के ६-७ व्यक्ति कमला और ब्रजकिशोर के साथ जगत बाबू से मिलने को तैयार हुए। साथ में दो-तीन स्वयंसेवक भी थे।

जगत बाबू अंदर चाय पी रहे थे। बाहर चुनाव के दफ्तर में काफी भीड़ थी। ये लोग जाकर बरामदे में कुरसियों पर बैठ गए।

नौकर ने कहा—"अपना कार्ड दीजिए।"

ब्रजकिशोर ने अपना नाम लिखकर उसे दे दिया।

थोड़ी देर में जगत बाबू बाहर आए। इन लोगों को देखकर, हाथ जोड़कर बोले—"कहिए, कैसे कृपा की?"

ब्रजकिशोरजी कुछ कहने ही वाले थे कि जगत बाबू बोले—"चलिए, अंदर कमरे में बातचीत करें।"

सब लोग कमरे के अंदर चले गए। कुरसी पर बैठते हुए जगत बाबू ने कहा—"कहिए।"

धीरे से ब्रजकिशोर ने कहा—"चुनाव में गंदगी फैलना कुछ अनिवार्य-सा हो गया है। हम चाहते हैं, वह बंद हो जाय।"

कुछ सोचकर जगत बाबू बोले—"किंतु क्या इसका दोष मुझ पर ही है?"

नम्रता के साथ ब्रजकिशोर ने कहा—"मैं यह मानता हूँ कि इसमें अधिक दोष हमारे दल का है। कुछ ऐसी भद्दी बातें हुई हैं, जिन्हें न होना चाहिए था।"

जगत बाबू चुप बैठे रहे। कमला ने देखा कि इधर कुछ ही दिनों में उनका स्वास्थ्य आवश्यकता से अधिक गिर गया है। चेहरा उदास-सा है।

ब्रजकिशोर बोले—"साथ में यह भी प्रार्थना है कि पुलिस को हस्तक्षेप करने का चांस न दिया जाय।"

जगत बाबू ने कहा—"यह भी ठीक है।"

सब लोग चुप रहे। कमला अब तक एक कोने में बिलकुल शांत बैठी हुई थी, एकाएक उठकर बोली—"मैं भी आपसे कुछ बात करना चाहती हूँ।"

उठते हुए जगत ने कहा—"अच्छी बात है, बग़लवाले कमरे में आ जाइए।"

दोनों बग़लवाले कमरे में चले गए।

उन्हें इस प्रकार कमरे में जाते देखकर दो-तीन व्यक्तियों ने परस्पर मुस्किराकर कुछ इशारा किया। ब्रजकिशोर ने इसे समझ लिया। साथ में पंडित रामचन्द्र भी थे। उन्होंने कमरे की ओर अपने कान लगा लिए। किवाड़े में दराज भी थी, जिससे यदा-कदा वह अंदर निगाह भी डाल लेते थे।

अंदर पहुँचकर कमला बोली—"क्या इसी प्रकार परस्पर युद्ध छिड़ा रहेगा?"

जगत बाबू ने कहा—"अब इस युद्ध में रह ही क्या गया है कमला ? तुम्हारी ओर से जितना मानापमान मेरा होना था, हो चुका। आश्चर्य है, तुमने अपनी आँखों से देखा और सहन किया !"

कमला नीचा सिर किए हुए चुप थी। जगत ने सूखे ओठों से कहा—"मैं मानता हूँ कि तुमने कुछ नहीं किया, किंतु हुआ तो सब कुछ तुम्हारी ही बदौलत।"

कमला के मुँह से एक शब्द नहीं निकला। थोड़ी देर चुप रहकर जगत ने कहा—"अब क्या कहना चाहती हो मुझसे ? क्या अकेले आकर नहीं कहा जा सकता था तुमसे ? इतनी भीड़ साथ में लाने की क्या जरूरत थी ?"

कमला रो रही थी।

इधर बग़ल के कमरे में बैठे हुए रामचंद्र ने किवाड़ की दराज़ से अंदर देखा, और बग़ल में बैठे हुए भगवती के कान में कुछ मुस्किराकर कहा। भगवती भी दराज़ से अंदर देखने लगे।

जगत ने कहा—"तुम ग़लत मार्ग पर जा रही हो कमला ! मैं यदि हार गया, तो कदाचित् मुझसे अधिक दुख तुमको होगा। ठीक कह रहा हूँ न ?"

और कमला जगत के पैरों पर गिर पड़ी। जगत ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया, और बोले—"रो क्यों रही है पगली !"

इसी समय भगवती ने धीरे से ब्रजकिशोर के पास आकर कहा—"जरा अंदर का दृश्य देख लीजिए।"

ब्रजकिशोर बोले—"यह बुरी बात है। इस तरह छुप-छिपकर देखना......"

और भगवती ने उन्हें जबरदस्ती उठाकर खड़ा कर दिया, और अंदर देखने के लिये विवश कर दिया।

ब्रजकिशोर ने झाँककर देखा—कमला जगत की गोद में पड़ी हुई थी।

मंत्रीजी फिर वहाँ न रुक सके। एक लंबी साँस लेकर घर के बाहर हो गए। सभी लोग उनके साथ चल दिए।

ब्रजकिशोर सबको लिए हुए घर पहुँचे। बैठक में कुरसी पर बैठते हुए उनके मुँह से निकला—"संसार में सभी कुछ संभव है। मैं कमला को ऐसा न समझता था।"

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर भगवती बोले—"अब क्या करना होगा। इस सीट से तो हम लोग निश्चित रूप से चुनाव हार गए।"

रामचंद्र ने कहा—"मैं तो पहले ही से गिरिजादेवी को खड़ा करने के पक्ष में था।"

ब्रजकिशोर ने कहा—"जो कुछ होना था, सो हो गया। अब हमको करना क्या होगा, इस पर विचार करना है।"

सब लोग चुप रहे। रामचंद्र ने कहा—"हमको कमला से इसका जवाब तलब करना चाहिए।"

बहुत कुछ सोचकर ब्रजकिशोर ने कहा—"ऐसा करना ठीक न होगा। अब तो हमें परिस्थिति सँभालनी ही है। बिना किसी प्रकार की बात कमला से किए हमको इसी उत्साह से चुनाव लड़ डालना चाहिए। हमको कमला से केवल इसी बात का खटका है कि वह कहीं अपना नाम वापस न ले ले। चुनाव समाप्त हो जाने पर सब कुछ समझ लिया जायगा।"

पंडित रामचंद्र बोले—"इस प्रकार की चरित्र-भ्रष्ट स्त्री को तो निकाल ही बाहर करना चाहिए।"

भगवती ने कहा—"इस प्रकार की स्त्रियों ही ने तो कांग्रेस को बदनाम कर रक्खा है।"

ब्रजकिशोर धीरे से बोले—"हमको धैर्य से काम लेना चाहिए। इस समय इस प्रकार की बातों से कांग्रेस की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लग सकता है। जो कुछ हमने देखा है, उसे २५ दिसंबर तक भूल जाना चाहिए। चुनाव के बाद इस पर शांति-पूर्वक विचार किया जायगा।"

पंडित रामचंद्र ने कहा—"आप ठीक कह रहे हैं। हमको चुनाव में हारकर कांग्रेस की बदनामी नहीं करना है। जब हम जीत जायँगे, तो कमला को इस्तीफा देने पर विवश किया जायगा।"

मन्त्रीजी चुप रहे।

उठते हुए भगवतीप्रसाद ने कहा—"अच्छा, चलता हूँ। चुनाव के दफ्तर में लोग मेरी राह देख रहे होंगे।"

सभी लोग चले गए।

रास्ते में हँसकर भगवती बोला—"वाह री, महामाया !"

मुस्किराकर पंडित रामचंद्र ने कहा—"मंत्रीजी भी बेचारे परेशान हैं।"

भगवती कह पड़ा—"वह बेचारे क्या करें? लगी नहीं छूटे........"

(११)

उस दिन रात-भर ब्रजकिशोर को नींद नहीं आई। बार-बार कमला ही उसके नेत्रों और भावों में आती रही। वह कमला को वास्तव में पवित्रता की प्रतिमूर्ति समझते थे। उन्होंने कभी कमला को किसी से बात भी करते नहीं देखा, किंतु आज अपनी आँखों से उक्त 'कांड' को देखकर उनका हृदय आश्चर्य, द्वेष, ईर्ष्या तथा क्षोभ से भर गया। उन्होंने जिस दिन कमला को पहली बार देखा था, उसी दिन से उसकी ओर आकृष्ट हुए थे। उसे इतनी पवित्र और कार्यशील पाकर उनका मन बड़ा प्रसन्न हुआ था। उनका मन सदैव उसके साथ रहने को होता था। उन्होंने ईमानदारी के साथ कमला का साथ दिया, और उसके हृदय में अपने प्रति महान् श्रद्धा उत्पन्न करने में सफल हुए। यही नहीं, उन्होंने जी-जान से उसे उन्नति की ओर बढ़ाया। वह हृदय ही में उसकी आराधना करते, और उन्होंने जीवन-पर्यंत ऐसा ही करने का निश्चय कर लिया था, किंतु आज उनका हृदय डोल गया। आज उन्होंने अनुभव किया कि कमला के लिये उनके हृदय में कितना प्रेम है। हृदय में एक कमज़ोरी छिपाए हुए भी उन्होंने कभी उसे कमला के सामने प्रकट करने का साहस

नहीं किया। आज उसी कमला को इस प्रकार देखकर उनके हृदय में छिपा हुआ तूफ़ान उमड़ पड़ा। उन्होंने सोचा, महान् साधुता के चक्कर में पड़कर ही उन्होंने मानसिक वेदना का आघात इतने दिन सहन किया। इसमें कमला का क्या दोष ? उनकी शालीनता ने ही अवसर खो दिया। किंतु अब ? उन्हें इस बात का दुःख था कि रामचंद्र और भगवती-प्रसाद-जैसे व्यक्तियों ने इस कांड को देख लिया। वह जानते थे कि ये लोग कितने क्षुद्र स्वभाव के हैं।"

उन्होंने सोचा, तो फिर जगत बाबू से पहले ही से उसका ऐसा संबंध रहा होगा ? समय पाकर चुनाव जीतने की महत्त्वाकांक्षा से जगत बाबू ने फिर अपना दाँव चलाया होगा ? फिर-फिर-फिर........

ब्रजकिशोर उठकर बैठ गए। रात अभी काफ़ी थी। पास ही खाट पर गिरिजा खुर्राटे भरकर सो रही थी।

उसे देखकर ब्रजकिशोर के मुँह से निकला—"सबसे भले वे मूढ़, जिन्हें न व्यापे जगत-गति।"

× × ×

चुनाव-युद्ध पूरे वेग पर था। वोट पड़ने के केवल दो दिन रह गए थे। भगवतीप्रसाद और रामचंद्र ने भली भाँति अध्ययन कर लिया था कि कमला उस दिन से ज़रा सुस्त-सी रहती है, और चुनाव के कार्यों में नहीं के समान भाग ले रही है। ब्रजकिशोर ने भी सब कुछ देखा, किंतु वह चुप थे।

मंत्रीजी को चुनाव जीतने की पूरी आशा थी। जनता पूर्ण रूप से सहयोग कर रही थी। बहुत-से अनुचित उपायों का प्रयोग करते रहने पर भी सरकारी उम्मेदवारों के छक्के छूट रहे थे। अगर किसी को अपनी सफलता की आशा थी, तो केवल जगत बाबू को। उन्हें रह-रहकर इस बात पर भी क्रोध आ जाता था कि आखिर कमला अपना नाम वापस क्यों नहीं ले लेती?

कमला बिलकुल क्षुब्ध और मौन थी। उस दिन पति के सामने जो सहसा उसका आत्मसमर्पण हो गया था, उस भूल के लिये वह दुखी थी। वह अपने को कर्तव्य-भ्रष्ट समझ रही थी। आवेश में जो उसने उस दिन पति से अपना नाम वापस ले लेने का वचन दे दिया था, उस भूल को वह अनुभव कर रही थी। उसे नहीं मालूम था कि पाँसा उसके हाथ से बाहर जा चुका था। दूसरी बात यह थी कि उसे पता न था कि लोगों ने उसके इस समर्पण को देख लिया है, और सावधान हो गए हैं। लोग उससे न तो कोई बात ही करते थे, और न चुनाव-योजना का उसे कुछ भेद ही देते थे। कमला मन-ही-मन चुनाव हार जाने की कामना करती थी।

जगत बाबू को भी यह सब भेद न मालूम था। वह इसमें कमला का ही दोष समझते थे। वह एक बार कमला से फिर मिलने की इच्छा रखते थे, किंतु ब्रजकिशोर तथा उनकी

मंझली ने कमला को आँख से ओट न होने दिया। अतएव जगत बाबू झल्लाकर अपने चुनाव-कार्य में लग गए।

अंत में चुनाव का दिन आ ही गया। सवेरे ही से पोलिंग-स्टेशनों पर ऊधम मच चला। गुंडेबाजी, डंडेबाजी, हुल्लड़, गाली-गलौज, मार-पीट और जाली वोटों का बाजार गरम हो उठा। बहुत-से कांग्रेसमैन पकड़ लिए गए; एकाध नेता की भी गिरफ्तारी हो गई। फल यह हुआ कि जनता में भी उत्साह बढ़ गया। सरकारी उम्मेदवारों के डेरे-तंबू उखड़ने लगे, और १२ बजते-बजते कांग्रेस के लिये मैदान साफ हो गया।

मगर जगत बाबू की पोलिंग पर शांति थी। उन्होंने न तो पुलिस की सहायता ली और न जाली वोटों का सहारा पकड़ा। कांग्रेसवालों ने काफी हुल्लड़ मचाने का प्रयत्न किया, किंतु जगत बाबू की पार्टी शांत रही। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्हें काफी वोट मिल गए।

अंत में जब फल निकला, तो लगभग सभी सीटों से कांग्रेस के उम्मेदवार विजयी हुए, केवल हार हुई कमला की। जगत बाबू लगभग ८० वोटों से जीत गए। इस हार ने कांग्रेस-पदाधिकारियों के चेहरे फक कर दिए।

व्रजकिशोर को इस हार से बड़ा रंज हुआ।

किंतु गिरिजा मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई।

कमला कई दिन तक लज्जा के मारे घर से बाहर नहीं

निकली। यद्यपि जगत बाबू के लौट जाने से उसके हृदय को सांत्वना मिली, किंतु फिर भी उसकी पोजीशन शहर में गिर गई थी। वह भविष्य की चिंता कर रही थी।

एक दिन लगभग ८ बजे रात्रि को वह भोजन करके चारपाई पर लेट गई। काफी सर्दी पड़ रही थी, अतएव उसने कहीं जाना ठीक न समझा। लिहाफ ओढ़कर वह चुपचाप एक पुस्तक पढ़ने लगी। थोड़ी देर बाद उसने पुस्तक बंद करके सिरहाने धर दी, और आँख मूँदकर विचार-धारा में डूबने लगी। उसने सोचा, क्या फिर उनके घर लौट जाऊँ? किंतु सरला के रहते यह असंभव है मेरे लिये। पुरुषों का क्या ठीक? तब फिर क्या कांग्रेस-कमेटी नहीं......अब यह खेल भी समाप्त हुआ-सा है। कमेटी को भलीभाँति मालूम है कि मैं अपने चुनाव के प्रति कितनी उदासीन रही। मैंने बहुत बुरा किया; न इधर की रही और न उधर की। उनसे वादा कर आई थी कि अपना नाम वापस ले लूँगी, और इधर......: हाय भगवान्! मेरा जीवन भी संघर्षों ही में नष्ट हो गया! अच्छी-भली देश-सेवा की ओर जा रही थी, मगर इस चुनाव ने ......

उसे एकाएक जगत बाबू पर क्रोध आया। इन्होंने बीच में पड़कर मुझे गिराया। मेरा पहले जीवन नष्ट किया विवाह करके, और दूसरी बार नष्ट किया चुनाव......

कमला किसी निर्णय पर न पहुँच सकी। उसने सो

जाने की चेष्टा की, किंतु व्यथित हृदय को नींद कहाँ! इतने में......

किसी ने दरवाजा थपथपाया। कमला ने लेटे-ही-लेटे कहा—"कौन है?"

आवाज आई—"मैं हूँ।"

कमला ने दरवाजा खोल दिया।

सामने खड़े थे व्रजकिशोर।

कमला ने आदर-पूर्वक हाथ जोड़कर कहा—"वंदे मंत्रीजी!"

व्रजकिशोर ने कहा—"कहो कमला, तुमने तो घर के बाहर ही निकलना छोड़ दिया।"

कुछ झेंपती-सी हुई कमला बोली—"जी हाँ, इधर कुछ तबियत भी ठीक नहीं थी। आइए, बैठिए।"

मंत्रीजी पलँग के एक ओर बैठ गए। दूसरी ओर बैठती हुई कमला बोली—"बहनजी अच्छी तरह हैं?"

उसकी ओर गौर से देखते हुए मुस्किराकर व्रजकिशोर ने कहा—"हमारे घर भी तुम नहीं आई।"

नीचा सिर किए हुए कमला बोली—"हाँ, क्या करूँ, तबियत ही घर से बाहर निकलने को नहीं होती।"

हँसकर व्रजकिशोर ने कहा—"क्या चुनाव में हार जाने की वजह से?"

कमला झेंपते हुए बोली—"जी नहीं; ऐसी बात तो नहीं है।"

मंत्रीजी बोले—"फिर क्या हमसे नाराज हो गई ?"

कमला नीचा सिर किए चुप रही। आज उसे मंत्रीजी की बातों में पहला-सा नियंत्रण न मालूम पड़ता था। इसके अतिरिक्त आज उसे उनसे बात करने में कुछ लज्जा-सी मालूम पड़ रही थी। वह उनसे वैसे भी बड़ा संकोच करती थी।

ब्रजकिशोर बोले—"अब तो घर से निकलो कमला, तुम्हारे न आने से मेरा मन भी काम में नहीं लगता।"

कमला लज्जा से दबी-सी जा रही थी। वह चाहती थी कि किसी प्रकार मंत्रीजी अब यहाँ से जायँ। वह चुपचाप बैठी रही। उसके गाल लज्जा से लाल हो रहे थे। इस प्रकार अकेले में उसे कभी मंत्रीजी से बात करने का अवसर न पड़ा था।

ब्रजकिशोर के चेहरे पर भी अनोखे-से भाव स्पष्ट हो चले थे। उनका साहस आगे बढ़ने का न होता था।

कमला ने कहा—"आपके लिये चाय का प्रबंध करूँ ?"

उसने उठने का उपक्रम किया। ब्रजकिशोर ने उसका हाथ पकड़कर जबरदस्ती बिठलाते हुए कहा—"बैठो कमला, मुझे चाय की जरूरत नहीं है।"

ब्रजकिशोर के स्पर्श से कमला का शरीर काँप उठा। वह फ़ौरन् बैठ गई। मंत्रीजी ने उस पर से हाथ हटा लिया।

कमला का दिल धड़क रहा था। उसने उनके चेहरे के भाव पढ़ लिए। ब्रजकिशोर का मुँह तमतमाया हुआ था। वह

बोले—"तुम्हारे बिना मेरी तबियत मिनट-भर भी काम-काज में नहीं लगती।"

कमला चुप रही। उसका जी धड़क रहा था। और कोई होता, तो कमला उसे फटकार देती. किंतु व्रजकिशोर से कुछ कहते हुए उसे लज्जा भी लग रही थी, और संकोच भी हो रहा था। वह उनसे कैसे चले जाने को कहे।

बात टालने की नीयत से वह बोली—"अच्छा, कल आऊँगी दफ्तर में।"

मगर व्रजकिशोर आज इस प्रकार टलनेवाले न थे। बोले—"आज तो तुम्हारे यहाँ से जाने का जी ही नहीं चाहता कमला!"

साहस करके कमला बोली—"आप इस प्रकार की बातें न करें मंत्रीजी! प्रत्येक व्यक्ति को आगा-पीछा सोचकर बात करनी चाहिए। आप अब घर जाकर आराम करें।

व्रजकिशोर की आँखें लाल सी हो गई थीं, तथा उनके गालों पर अरुणिमा-सी खेल रही थी। धीरे से कमला का हाथ पकड़ते हुए बोले—"कमला!"

कमला अपना हाथ छुड़ाकर खड़ी हो गई और कुछ हाँफती-सी बोली—"आज आपको क्या हो गया है व्रजकिशोर बाबू! आप यहाँ से चले जायँ।"

व्रजकिशोर चुपचाप खड़े रहे। कमला ने कहा—"मैं आप पर श्रद्धा रखती थी व्रजकिशोर बाबू. किंतु मैंने देख लिया

कि आप-जैसे सज्जन और उच्च विचार के व्यक्ति भी इतने नीचे स्तर पर आ सकते हैं। बड़ी बुरी बात है।"

ब्रजकिशोर का नशा उतरने लगा। किंतु मनुष्य जब अपनी मनोवृत्तियों का स्वयं परदा उतार देता है, तो एक अजीब उलझन में पड़ जाता है। वह न इधर का रहता है और न उधर का। अपने देवत्व की हत्या के जब वह अपना नग्न रूप दिखला चुकता है, और उसमें असफलता सामने खड़ी देखता है, तो उसके सामने दो ही मार्ग रह जाते हैं—या तो वह देवत्व को तिलांजलि देकर नग्न राक्षस बन जाय या फिर अपने देवत्व को फिर से क़ायम रखने के लिये गिड़गिड़ाकर अपनी क्षणिक भूल को स्वीकार करके पश्चात्ताप की बात करे। ब्रजकिशोर जल्दी में इन्हीं दोनो रास्तों को तय करने की उलझन में पड़ गए।

इन्हें चुपचाप खड़ा देखकर कमला बोली—"आपने जिन मनोवृत्तियों को अभी स्पष्ट किया है, उसमें आपको सफलता न मिलेगी ब्रजकिशोर बाबू! आप चुपचाप घर जायँ। मैं भी इसे भूलने की चेष्टा करूँगी।"

ब्रजकिशोर चुपचाप चले जाने की चेष्टा करने लगे। कमला बोली—"कदाचित् आपने मेरे विषय में धोखा खाया मंत्रीजी। मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो पद के लालच में आप लोगों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करती हैं।"

एकाएक ब्रजकिशोर की आँखों के सामने कमला का वह

चित्र घूम गया, जो उन्होंने जगत बाबू के घर में उस दिन देखा था। उनके जी में आया कि वह दो-चार जली-कटी सुना दें कमला को। बड़ी पाक-साफ़ बनती है।

कमला बोली—"आपको ऐसा साहस हुआ आज, यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है।"

ब्रजकिशोर बोले—"क्या जगत बाबू के विषय में यह बात लागू नहीं है कमला! वह ज़माने-भर का ऐयाश, लंपट......"

और 'तड़' से एक थप्पड़ कमला ने मंत्रीजी के गाल पर लगाया। "नीच, बदमाश!" उसने हाँफते हुए कहा।

ब्रजकिशोर गाल पर हाथ रखकर सन्न हो गए। कमला ने हाँफते हुए कहा—"उनके विरुद्ध आपने एक शब्द भी निकाला, तो अच्छा न होगा।"

ब्रजकिशोर चुपचाप घर से बाहर निकल गए।

कमला हाँफती हुई धड़ाम से चारपाई पर जा गिरी।

(१२)

जगत ने एक साँस लेकर कहा—"मैंने तो तुम्हें अपने पास रखने के लिये सब कुछ किया, किंतु तुमने अपने स्वभाव के कारण सदा मेरा तिरस्कार ही किया है।"

उठकर खड़ी होते हुए कमला ने कहा—"अच्छा, तो फिर जा रही हूँ।"

जगत ने कहा—"अब कब दर्शन होंगे ?"

कमला एक निःश्वास लेकर बोली—"अब कदाचित् ही भेंट हो। संसार मुझे मृत समझता आया है। मैं चाहती हूँ, मुझे इसी प्रकार समझता रहे। मैं जीकर ही क्या करूँगी।"

उसके आँसू आ गए।

जगत भी दुःखी हुए, बोले—"अब मैं यह समझता हूँ कि मैंने व्यर्थ में तुम्हारे बीच में आकर तुम्हें हानि पहुँचाई। मेरा क्रोध तो मंत्री के ऊपर था।"

आज कमला मंत्रीजी के विरुद्ध कुछ सुनकर बोली नहीं। जगत बोला—"तुम्हारा कुछ भी अनुराग हो उस पर, मैं उसे अव्वल दरजे का नीच समझता हूँ।"

कमला अब ब्रजकिशोर को उतना बुरा नहीं समझती थी, जितना उसके पति कह रहे थे, किंतु फिर भी कल की घटना सोचकर चुप रही।

जगत ने कहा—"मैं तो अब भी कहता हूँ, यह घर तुम्हारा है, मैं तुम्हारा हूँ, फिर तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता ही क्या है!"

थोड़ी देर चुप रहकर कमला बोली—"अब मेरा यहाँ रहना ही नहीं हो सकता। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि यहाँ अपना मुँह भी दिखला सकूँ।"

जगत चुप रहे। कमला बोली—"मैं सभी की आँखों में गिर गई हूँ। तुम्हारी आँखों में, सरला की आँखों में तथा सारी जनता की आँखों में......"

बात काटकर जगत ने कहा—"मैंने तो तुम्हें कुछ नहीं कहा कमला।"

कमला बोली—"आप न कहें, पर इससे क्या होता है अब। अब तो मुझे चले ही जाना होगा।"

जगत विचलित हुए। उन्होंने कमला का हाथ पकड़कर कहा—"तो फिर अब उपाय कमला?"

कमला बोली—"इस नगर में, इस घर में तथा राजनीतिक क्षेत्र में, सभी जगह तो मेरा मान-संयम नष्ट हो चुका है। अब कोई उपाय नहीं।"

कमला उदास भाव से चलने लगी।

जगत ने आगे बढ़कर कहा—"मत जाओ कमला! कमला! कमला!"

किंतु कमला चली गई।

दूसरा खंड

(१)

दशाश्वमेध-घाट के पास से एक सड़क घूमकर गोदोलिया जाती है। गोदोलिया एक विचित्र-सा नाम है। कहते हैं, इस सड़क का नाम गोधूलिका था। काशी के घाट अपना निज का महत्त्व रखते हैं। प्राचीन काल में गंगाजी का विशाल वक्षःस्थल छोटी-बड़ी नौकाओं से भरा रहता था। गोधूलि के समय दशाश्वमेध-घाट पर नावें लग जाती थीं, और लोगों की भीड़ उस स्थान पर एकत्र हो जाती थी, जिसे आजकल गोदोलिया कहते हैं, और जहाँ आज भी काशी नगर में चारो ओर जाने के लिये मोटरों, इक्कों, गाड़ियों तथा रिक्शों का एक समूह यात्रियों की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। वह समय गोधूलि का होता था, अतएव उस समय यह स्थान गोधूलिका के नाम से प्रसिद्ध था।

इसी गोदोलिया-रोड के वाम पार्श्व में, पूरब की ओर, एक छोटी-सी गली है। बाएँ हाथ पर एक पत्थर का बड़ा-सा मकान है। इस मकान में बनारसी सिल्क के एक बड़े व्यापारी पंडित रामेश्वरनाथ रहते हैं। पंडितजी काफी वृद्ध हो चुके हैं, अतएव व्यापार-व्यवस्था को उनके दोनो पुत्रों—कृष्णानंद तथा रामानंद—ने अपने हाथों में ले रक्खा है। दोनो पुत्रों में

परस्पर मेल है, तथा उनकी पत्नियों में भी पारस्परिक संबंध अच्छे हैं। भरा-पूरा घर है, धन है, और जनता में नाम भी है।

गोधूलि का समय था। कृष्णानंद की स्त्री सुमित्रा अभी अपने छोटे दो वर्षीय बालक शिव को सुलाकर कपड़े सिलने की मशीन लेकर बैठी थी। अंधकार धीरे-धीरे बढ़ चला था, किंतु अभी बिजली के स्विच दबाए न गए थे।

"काकी, काकी, दौड़ो, मा को क्या हो गया!"—कहती हुई नौ वर्षीय रामानंद की लड़की सविता घबराई हुई सुमित्रा के सामने आ खड़ी हुई। भड़भड़ाकर सुमित्रा अंदर की ओर दौड़ी।

कमरे में फर्श पर हाथ-पैर फैलाए रामानंद की स्त्री त्रिवेणी बेहोश-सी पड़ी हुई थी। सुमित्रा ने उसके माथे पर हाथ रक्खा। माथा ठंडा था। वह चिल्लाकर बोली—"सविता, नौकर के साथ दौड़कर जा, और बाबूजी को बुला ला।"

सुमित्रा सविता को नौकर के साथ भेजकर त्रिवेणी के उपचार में लग गई। त्रिवेणी होश में आकर पहले तो चिल्लाई, किंतु फिर 'ऊँ-ऊँ-ऊँ' करती हुई आँख बंद करके लेट गई।

सुमित्रा ने धीरे से उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—"घबरा मत तेनी, अभी जो ठीक हो जायगा।"

त्रिवेणी ने कसकर जेठानी का हाथ पकड़ लिया, और काँपती हुई-सी बोली—"जीजी!"

उसे बच्चों की भाँति पुचकारते हुए सुमित्रा बोली—"क्या बात है तेनी ? पानी पियोगी ?"

त्रिवेणी ने सिर हिलाकर पानी माँगा। इतने में आ गए रामानंद डॉक्टर सेठ को लेकर।

त्रिवेणी होश में थी। डॉक्टर ने उसकी नब्ज हाथ में पकड़ते हुए कहा—"तबियत ठीक है आपकी ?"

त्रिवेणी ने उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"जी।"

"आप लेटी रहिए।" कहकर डॉक्टर ने नब्ज छोड़ दी।

रामानंद ने पूछा—"क्या बात है डॉक्टर साहब ?"

डॉक्टर ने मुस्किराकर कहा—"कोई बात नहीं है। अब सब ठीक है।"

नुसखा लिखकर डॉक्टर ने कहा—"यह दवा मँगाकर दे देना। कोई बात नहीं है, केवल कुछ डर-सी गई हैं। इनसे कोई बात न करे। बस, आराम करने दो।"

डॉक्टर चले गए। त्रिवेणी अब बिलकुल होश में थी। रामानंद को कमरे में छोड़कर सुमित्रा अपने कमरे में चली गई।

थोड़ी देर बाद रामानंद कमरे में आकर बोले—"भाभी, मैं जरा जा रहा हूँ। तुम वहीं चली जाओ।"

सुमित्रा ने पूछा—"कैसा जी है ?"

रामानंद बोले—"ठीक है। अब सो रही है।"

× × ×

दो दिन बाद त्रिवेणी पूर्ण स्वस्थ हुई। रामानंद ने हँसते हुए पूछा—"क्या डर गई थीं उस दिन?"

त्रिवेणी अर्द्ध-मुसकान के साथ बोली—"यों ही।"

रामानंद ने कहा—"बड़ी बहादुर जो हो।"

त्रिवेणी चुप हो गई। रामानंद ने कहा—"जिनका दिल डरपोक होता है, वे ही डर जाते हैं। तुम्हें तो मैं ऐसा न समझता था।"

त्रिवेणी—"अब बढ़-बढ़कर बातें न मारो। मैं जानती हूँ, आप कितने बहादुर हैं। चूहा निकले, तो डर जाओ।"

रामानंद बोले—"यह तो तुम्हारे मन समझाने की बात है। मनुष्य को कभी डरना न चाहिए। उसे इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि वह उस बात के तत्त्व को समझे, और भयानक तथा रहस्यमयी बातों का भंडाफोड़ करने की चेष्टा करे। सामने भय को देखकर इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि आखिर यह है क्या। विचारों का प्रयोग न करनेवाला ही किसी एक ऐसी वस्तु को देखते ही डर जाता है, जो असाधारण-सी है। वह यह जानने की चेष्टा ही नहीं करता कि आखिर इसमें तत्त्व क्या है।"

सूखा-सा मुँह बनाकर त्रिवेणी ने कहा—"ये सब कहने की बातें हैं। हम जिस वस्तु को कभी देखने की आशा नहीं करते और घटना-वश जब वही वस्तु हमारे सामने आ जाती

है, तब हमारा विवेक काम नहीं देता। इस प्रकार की बहुत-सी वस्तुएँ ......"

बात काटकर हँसते हुए रामानंद ने कहा—"जैसे भूत-प्रेत आदि ? यही न ?"

कुछ भयभीत-सी होकर त्रिवेणी ने कहा—"हाँ। जो व्यक्ति इस संसार में न हो, और यदि आपको सड़क पर दिखलाई पड़ जाय, तो आपका क्या हाल हो ?"

साहस के साथ रामानंद बोले—"कुछ भी न हो। सबसे पहले मैं यह जानने की चेष्टा करूँगा कि आखिर यह सब है क्या ? फिर यह देखूँगा कि वह वही व्यक्ति है, या कोई अन्य व्यक्ति वेष बदलकर धोखा दे रहा है। इसमें भयभीत होने की तो कोई बात नहीं।"

त्रिवेणी बोली—"मैं यह बात नहीं मानती।"

रामानंद ने कहा—"तुम न मानो, किंतु समय पड़ने पर दिखा दूँगा कि मैं ठीक कह रहा हूँ या नहीं।"

(२)

दूसरे दिन रात्रि के लगभग ८ बजे—

ज्यों ही रामानंद घर में घुसने को हुए, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई किवाड़ की आड़ में खड़ा है।

बरोठे में लालटेन का मध्यम-सा प्रकाश फैल रहा था। रामानंद ने स्पष्ट रूप से श्वेत वस्त्रों में एक स्त्री को खड़े देखा।

वह बोले—"कौन है?"

धीमे स्वर में उत्तर मिला—"मैं हूँ।"

रामानंद कुछ डरे, किंतु साहस के साथ बोले—"तुम कौन?"

उत्तर मिला—"मैं हूँ, कमला।"

रामानंद के मुँह से एक चीख-सी निकलती रह गई। उन्होंने साहस के साथ कहा—"तुम-तुम—कमला, जीवित......"

आकृति बोली—"हाँ, मैं जीवित हूँ। क्या विश्वास नहीं होता भाई?"

रामानंद ने देखा, वही आकृति, वही क़द, वही स्वर। बोले—"क्या सच? नहीं, यह नहीं हो सकता। हरिश्चंद्र ने सूचना तुम्हारे......"

स्त्री बोली—"वह सूचना ग़लत थी। घटना-चक्र में पड़कर......"

रामानंद साहस के साथ बोले—"तो फिर क्या तुम्हारा विश्वास करूँ?"

स्त्री बोली—"मैं सच ही कह रही हूँ भाई! हरिश्चंद्र ने सबको धोखा देकर मेरा जीवन बरबाद कर दिया।"

रामानंद बोले—"किंतु अब यहाँ क्या करने आई हो? तुम्हारा तो मर जाना ही ज़्यादा अच्छा था।"

ऐसा प्रतीत हुआ कि कमला रो रही थी। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—"आप ठीक कह रहे हैं भाई! किंतु क्या......"

रामानंद ने कुछ उलझन-सी अनुभव करते हुए कहा—"किंतु—किंतु अब मैं क्या करूँ?"

कमला बोली—"क्या जीवित रहने पर भी अब मैं तुम्हारे घर में स्थान नहीं पा सकती?"

सिर खुजलाते हुए रामानंद बोले—"किंतु, क्या घर-वाले विश्वास करेंगे कि तुम जीवित हो। अजब समस्या है।"

कमला चुप रही। रामानंद कुछ सोचकर बोले—"इस समय तुम जाओ कमला। कल इसी समय इसी स्थान पर मिलना।"

कमला धीरे से घर के बाहर निकल गई।

रामानंद ने फिर एक बार उसे सिर से पैर तक देखा। कमला ही मालूम होती है।

वह एक साँस लेकर घर के अंदर चले गए।

(३)

जब कमला बहुत अधिक बीमार हो गई थी, तो उसके घरवालों को उसके बचने की आशा जाती रही थी। हरिश्चंद्र ने जी तोड़कर उसकी सेवा-शुश्रूषा की थी। जब वह भी निराश हो गया, तो उसने उस स्थान से लगभग १०-१२ कोस दूर एक ऐसे महात्मा का पता लगाया, जिनके विषय में यह प्रसिद्ध था कि वह मृतक को जिला देते हैं। एक दिन वह चालाकी से कमला को लेकर वहाँ से चंपत हो गया। कमला की चारपाई पर यह लिखकर छोड़ गया था—

"मैं कमला को एक योगी के पास इलाज के लिये लिए जा रहा हूँ। यदि वह बच गई, तो लौटूँगा, नहीं तो नहीं।"

वास्तव में कमला को ज्वर उतरकर हृदय-रोग बड़े भयानक रूप से हो गया था। महात्माजी ने, जो वास्तव में एक सुपटु चिकित्सक थे, रोग को समझा। उनके इलाज से कमला को बल मिला, और वह कुछ दिनों में अच्छी हो गई। हरिश्चंद्र बाल्यकाल ही से मुग्ध था। अवसर पाकर वह कमला को बहाने से कलकत्ते ले गया, और उसके पिता को कमला के मर जाने का समाचार दे दिया। पंडित रामेश्वरनाथ पहले तो बिगड़े, किंतु बाद में विवेक से काम लिया। अपनी अविष्ट

बचाने के लिये उन्होंने इस पर विश्वास कर लिया, और इसी समाचार को सर्वत्र फैला देने ही में उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा की कुशल समझी।

रामानंद के मुँह से सारा हाल सुनकर पिता ने एक साँस लेकर कहा—"मैं तो पहले ही से संदेह करता था। किंतु अब उपाय ?"

रामानंद ने कहा—"मैंने उसे आज बुलाया है, शाम को। समझ में नहीं आता, क्या करूँ ?"

कुछ सोचकर रामेश्वरनाथ ने कहा—"इस घर को तो यह मालूम है कि कमला मर गई। आज इतने वर्ष बाद उसे यहाँ देखकर इन लोगों का क्या हाल होगा ?"

रामानंद ने कहा—"सबको पहले से बता देना होगा। मैं धीरे-धीरे सबसे सभी कुछ बता दूँगा। भाई साहब को तो मैंने बता दिया है।"

रामेश्वरनाथ बोले—"अच्छी बात है, किंतु यह सब बड़ा विचित्र-सा लग रहा है। कैसे क्या होगा ?"

रामानंद धीरे से बोले—"सब कुछ ठीक हो जायगा।"

कमला रामेश्वरनाथ की इकलौती पुत्री थी, और वह उसे बहुत चाहते थे। कमला यहाँ पर सभी के प्यार की वस्तु थी। उसे खोकर सभी को दुःख हुआ था। जब वह हरिश्चंद्र के साथ चली गई, तो रामेश्वरनाथ बहुत बिगड़े थे, किंतु जब हरिश्चंद्र ने उन्हें उसकी मृत्यु का समाचार दिया, तो उन्हें बड़ा

रंज हुआ। फिर भी रामेश्वरनाथ को कमला की मृत्यु का विश्वास नहीं हुआ। वह कुछ दिन हरिश्चंद्र की तलाश में रहे, किंतु उसका कुछ भी पता न चला। अंत में हारकर वह बैठ रहे। आज एकाएक कमला के जीवित रहने का समाचार सुनकर उन्हें हर्ष भी हुआ और कष्ट भी। कमला से मिलने के लिये उनका हृदय तड़प उठा, किंतु उन्होंने सोचा कि आखिर लोगों से क्या कहा जायगा। ससुराल भी भेजने का साधन नहीं रहा, क्योंकि उन्होंने सुन लिया था कि जगत ने, कई वर्ष हुए, दूसरा विवाह कर लिया है। वह कुछ परेशान भी हुए। उन्हें पुत्रों की क्षमता पर विश्वास था, अतएव उन्हें थोड़ा-सा धैर्य हुआ।

कल रात्रि ही में उपयुक्त वातावरण देखकर रामानंद ने त्रिवेणी से कहा—"एक खुशखबरी तुम्हें सुनाऊँ?"

त्रिवेणी ने कहा—"क्या?"

धीरे से रामानंद ने कहा—"कमला अभी जीवित है।"

"एँ!" कहते-कहते त्रिवेणी के माथे पर पसीना आ गया। वह एकदम खड़ी हो गई।

"तुम्हें याद होगा कि वह एकाएक हरिश्चंद्र के साथ गायब हो गई थी।" रामानंद ने पूछा।

"हाँ, किंतु।" आश्चर्य के साथ त्रिवेणी बोली।

"हाँ, किंतु कुछ दिन बाद ही हरिश्चंद्र ने उसके मरने की सूचना दे दी थी।" रामानंद बोले।

त्रिवेणी चुप रही। रामानंद ने कहा—"कल मुझे मालूम हो गया कि वह हरिश्चंद्र की चाल थी। कमला अभी जीवित है।"

त्रिवेणी का चेहरा कुछ घबराया-सा हुआ था। वह बोली—"आपको कैसे मालूम हुआ ?"

कुछ रुककर रामानंद ने कहा—"कल वह यहाँ आई थी।"

"अरे बाप रे!" कहकर त्रिवेणी बेंत की तरह काँपने लगी।

"इसमें घबराने की क्या बात है।" रामानंद ने उसे सांत्वना देते हुए कहा।

कुछ परेशानी-सी व्यक्त करती हुई त्रिवेणी बोली—"एक बात बताऊँ आपको।"

"हाँ-हाँ।" रामानंद ने कुतूहलता-पूर्वक कहा।

"मैंने भी एक दिन कमला को इसी घर में देखा था। मैं तो घबराकर बेहोश हो गई थी।" त्रिवेणी ने भयभीत-सी होकर कहा।

"अरे, क्या उस दिन इसीलिये तुम्हारी तबियत खराब हो गई थी।" आश्चर्य के साथ रामानंद ने पूछा।

"हाँ, मैं तो उन्हें देखते ही डर गई थी। मैं कमरे में खड़ी आल्मारी से कपड़े निकाल रही थी, एकाएक घूमकर देखा, तो कमला। मेरे तो होश ही उड़ गए। कोई उपाय न देखकर मैं तो चिल्ला पड़ी। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम हुआ कि वह

कहाँ गईं। आज आपके मुँह से यह सब सुनकर मेरा भय दूर हुआ।" त्रिवेणी ने कहा।

"आश्चर्य है कि तुमने मुझे कुछ नहीं बतलाया। खैर, मैंने आज उसे बुलाया है। अब न डर जाना कहीं।" हँसते हुए रामानंद ने कहा।

"मैं क्या ऐसी पागल हूँ। हाँ, उस दिन मेरा बुरा हाल हो गया था।" त्रिवेणी अब जरा मुस्कराकर बोली।

रामानंद चुप हो गए। त्रिवेणी ने कहा—"किंतु फिर क्या होगा?"

सोचकर रामानंद ने कहा—"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। उसके आने पर निश्चित करेंगे।"

× × ×

उसी दिन रात को खद्दर की श्वेत साड़ी पहने हुए कमला ने ठीक दस बजे रात्रि के समय अपने पिता के घर में प्रवेश किया। सभी लोग घर पर थे।

कमला अंदर आते ही पिता से लिपट गई, और हिचकियाँ भरकर रोने लगी। रामेश्वरनाथ ने स्वयं आँसू बहाते हुए कहा—"रो मत बेटी, हमने तुम्हें क्षमा कर दिया।"

कमला सबसे मिलकर रोई। बाद में त्रिवेणी की ओर देखकर बोली—"भाभी तो मुझे देखकर उस दिन इतना डर गईं कि बस कुछ पूछो न।"

त्रिवेणी खिसियाकर चुप हो गई। सुमित्रा ने जरा हँसकर कहा—"डर जाने की बात ही थी। इसमें बेचारी का दोष ही क्या था।"

सब लोग मुस्किरा दिए।

(४)

कुछ दिन कमला को घर में रखकर रामानंद ने अनुभव किया कि अधिक दिन उसे साथ रखना असंभव-सा है। कमला का रहस्य कुछ इतना विचित्र-सा था कि न वह लोगों को बताया जा सकता था और न छिपाने ही की गुंजायश थी। सारा घर शीघ्र ही चिंतित हो उठा। कमला से किसी ने कभी कुछ न कहा, किंतु फिर सारे घर में क्षुब्ध वातावरण देखकर उसका हृदय भी चिंता से भर गया।

उसकी अनुपस्थिति में उसकी मा की मृत्यु हो गई थी, अतएव कमला पिता ही के साथ रहकर उनकी सेवा करती थी। कमला की वह पहलेवाली तेजी, गर्व, उद्दंडता, ज़िद, सभी कुछ उससे दूर हो गया था। अब रह गई थी कमला सीधी-सादी, चेहरे पर उदासी लिए हुए तथा मौन।

सबकी सलाह लेकर एक दिन पिता ने कमला से पूछा—"जगत बाबू को सूचना दे दूँ बेटी!"

कमला ने सिर हिलाकर कहा—"न बाबूजी। वह स्थान तो छिन चुका मेरा।"

कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू आ गए। रामेश्वरनाथ ंभीर होकर मौन हो गए।

सुमित्रा ने यह सुना, तो कहा—"यह भी विचित्र बात है। जगत बाबू तो इतने सज्जन हैं कि अवश्य दीदी को बुला भेजेंगे।"

धीरे से त्रिवेणी ने कहा—"सब कुछ सज्जन हैं, मगर जब इनके गुन सुनेंगे, तो फिर........"

सुमित्रा दाँतो-तले जीभ दबाकर बोली—"चुप-चुप तेनी। कोई सुन लेगा, तो फिर........."

त्रिवेणी बोली—"वह तो सब एक दिन खुलकर ही रहेगा। कहाँ तक बात दबाई जा सकती है।"

सुमित्रा ने कहा—"सो तो ठीक है, मगर चार दिन के लिये हम क्यों बदनामी लें।"

त्रिवेणी दिल्ली की लड़की थी। बोली—"मैं तो जब मा के घर जाऊँगी, तो जीजाजी (जगत बाबू) से अवश्य मिलकर सब कुछ बता दूँगी।"

सुमित्रा ने आँखें तरेरकर कहा—"चुप पगली! बाबूजी यह सब सुनेंगे, तो आफ़त मचा देंगे।"

अंत में एक दिन रामानंद ने पिता से कहा—"आखिर कब तक कमला को छिपाकर रक्खा जा सकेगा बाबूजी! इस प्रकार तो हमको भी कष्ट होता है, और उस बेचारी को भी क्या सुख मिल सकेगा?"

रामेश्वरनाथ बोले—"फिर कह भेज दूँ उसे। मेरा दिमाग़ तो स्वयं नहीं काम करता।"

रामानंद ने कहा—"मैं तो जगत बाबू को खबर दे देना ठीक समझता था, किंतु कमला स्वयं इसको पसंद नहीं करती। जगत बाबू इतने सुलझे हुए आदमी हैं कि परिस्थिति को ठीक ही समझ लेंगे। उनसे मुझे सब प्रकार के सहयोग की आशा है।"

सिर खुजलाते हुए परेशानी के साथ रामेश्वरनाथ ने कहा—"किंतु क्या किया जाय। कमला जो राजी नहीं होती।"

खिझलाकर रामानंद ने कहा—"यह तो बेकार की ज़िद है।"

कृष्णानंद सीधे-सादे स्वभाव के व्यक्ति थे। दिन-भर दुकान में काम करना तथा दुनिया के झंझटों से संबंध न रखना। जब उनसे सलाह ली गई, तो बोले—"तुम्हीं लोग जो ठीक समझो, करो।"

सुमित्रा बोली—"दुनिया-भर में बदनामी फैलती जा रही है, और आप कानों में तेल डाले बैठे हैं। भाईजी (रामानंद) कहाँ तक सब काम सँभाले रहें।"

कृष्णानंद बोले—"तो फिर जैसा कहो, वैसा करूँ?"

सुमित्रा बोली—"बाबूजी से मुँह खोलकर कहते क्यों नहीं हो?"

कृष्णानंद बोले—"रामानंद सब कुछ कह लेगा।"

सुमित्रा ने कहा—"जब कोई बाहर का आदमी या स्त्री

घर में आते हैं, तो बाबूजी कमला को कमरे में छिपाते फिरते हैं। आखिर यह कब तक चलेगा?"

कृष्णानंद चुप रहे।

रामेश्वरनाथ परिवार में सबसे अधिक दुखी थे। मुद्दतों बाद बिछुड़ी हुई बेटी को पाकर वह अब उससे विलग न होना चाहते थे। इधर धीरे-धीरे घर में विरोध का तूफान खड़ा हो रहा था। और, ठीक भी था, क्योंकि धीरे-धीरे बाहर भी कानाफूसी शुरू हो चली थी। अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ जान-बूझकर इनके घर में आतीं और ताक-झाँक करतीं।

जल्दी में रामेश्वरनाथ कुछ निर्णय न कर पाते थे। एक दिन कमला सबके साथ बैठी हुई थी। उसी समय पड़ोस की एक स्त्री एकाएक आ पहुँची। लगभग भंडाफोड़ ही-सा हो गया। अंत में उसे सब कुछ बता दिया गया। इस प्रकार रामो से श्यामो और मुन्नी से धुन्नी ने कहा, और बात फैलने लगी।

घबराकर रामानंद ने पिता से एक दिन कुछ उत्तेजित होकर कहा—"अब जल्दी कुछ प्रबंध कीजिए बाबूजी, नहीं तो मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा।"

रामेश्वरनाथ भी परेशान थे। बोले—"तो भई, मैं ही कमला को लेकर कहीं चला जाऊँगा। अकेली तो वह जाने से रही।"

कमला ने जब सब कुछ सुना, तो वह कष्ट से रो पड़ी। रोते हुए उसने कहा—"मैं कहीं चली जाऊँगी बाबूजी! आप चिंता न करें।"

उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए रामेश्वरनाथ बोले—"तू कहाँ जायगी बेटी। मैं तेरे साथ चलूँगा।"

अंत में रामेश्वरनाथ ने कमला को लेकर हरिद्वार जाने का निश्चय किया।

आज कमला ने सोचा कि उसने पति के यहाँ न रहकर बड़ी ग़लती की। उसने आज अनुभव किया कि जगत बाबू ने उसके साथ वास्तव में कितनी सज्जनता का व्यवहार किया था। अब वह किस मुँह से वहाँ जाय। उसे पति की अपेक्षा पिता के घर में आश्रय पाने का अधिक भरोसा था। उसकी धारणा कितनी ग़लत थी! आज उसे अपने स्वभाव पर भी क्रोध आया।

रामेश्वरनाथ के हरिद्वार जाने के निर्णय को यदि किसी ने नहीं पसंद किया, तो वह थे कृष्णानंद। उन्होंने सुमित्रा से कहा—"यह क्या सूझी बाबूजी को?"

सुमित्रा बोल उठी—"तो फिर और करें क्या?"

कृष्णानंद धीरे से कुछ सोचकर बोले—"आखिर को तो अपनी बहन ही है न कमला। अगर लोग-बाग आलोचना करते हैं, तो करने दो। उनके पीछे अपनी बहन को हम घर से निकाल दें क्या!"

सुमित्रा ने कहा—"और जो चारों ओर बदनामी फैल गई, तो ?"

कृष्णानंद ने कहा—"मैं विशेष पढ़ा-लिखा नहीं हूँ सुमित्रा। यद्यपि इन सब बातों को रामानंद ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है, फिर भी मेरा मत यह है कि लोक-निंदा अधिकांशतः सार-हीन हुआ करती है। यदि हम अपनी बात पर, अपने सिद्धांतों पर अटल रहें, तो हम निश्चित रूप से विघ्न-बाधाओं के पहाड़ को पार करके अपने लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं। रामायण में तुमने पढ़ा होगा कि एक मूर्ख धोबी के कथन पर ही सीता को रामचंद्र ने राजमहल से निकाल दिया। क्या यह अच्छा हुआ ?"

सुमित्रा बोली—"यह तो लोगों को प्रसन्न रखने के लिये रामचंद्रजी को करना पड़ा।"

कृष्णानंद ने कहा—"किंतु यह बात तो ग़लत थी। रामचंद्रजी को सीता के चरित्र पर पूर्ण विश्वास था, और वह उनकी अग्नि-परीक्षा भी ले चुके थे।"

सुमित्रा ने कहा—"यह तो ठीक है, किंतु लोगों को प्रसन्न ही रखना पड़ता है।"

कृष्णानंद ने कहा—"यह ख़ूब कही तुमने। लोगों को प्रसन्न करने के लिये हम अपना घर बिगाड़ लें, अपनी बहन-बेटियों को घर से निकाल दें !"

मुँह बनाकर सुमित्रा बोली—"किंतु तुम्हारी बहन क

तो अग्नि-परीक्षा नहीं हुई। वह सीता कैसे हो सकती है?"

सिर हिलाते हुए कृष्णानंद ने कहा—"यह दूसरी बात है। यदि कमला के चरित्र से तुम लोगों को संतोष न था, तो तुम्हें उसे घर ही में न रखना चाहिए था। किंतु बात ऐसी नहीं है। तुम लोग तो लोक-निंदा से उसे हटाना चाहते हो। ठीक कह रहा हूँ न?"

सुमित्रा संतुष्ट न होते हुए भी निरुत्तर हो गई। कृष्णानंद बोले—"मैं तुम लोगों के किसी कार्य में बाधक नहीं होना चाहता, किंतु यह कह सकता हूँ कि तुम लोग बाबूजी को अनावश्यक ही इतना परेशान कर रहे हो।"

कुछ देर चुप रहकर सुमित्रा बोली—"तो मैं न बोलूँगी अब इस विषय में। मुझे क्या करना है, जो कुछ भुगतना पड़ेगा, तुम लोगों को।"

ज़रा गंभीर होकर कृष्णानंद ने कहा—"यही बात तो तुम लोगों की बहुत बुरी है। भारतीय स्त्रियाँ जब तर्क में हारने लगती हैं, तो हृदय से हार नहीं मानतीं, वरन् अड़ंगा-नीति से अपने पक्ष का समर्थन करना चाहती हैं। बात को समझने का प्रयत्न करना चाहिए, और यदि बात समझ में आ जाय, तो फिर उसका पक्षपात-रहित होकर समर्थन करना चाहिए। अड़ंगेवाली नीति तो ग़लत है न?"

सुमित्रा बोली—"भई, हम लोग मूर्ख ठहरे। जल्दी बात समझ नहीं पाते।"

कृष्णानंद ने कहा—"समझती तुम लोग सब कुछ हो, किंतु अपने पुराने विचारों को छोड़ना नहीं चाहतीं।"

---

(५)

अंत में रामेश्वरनाथ कमला को लेकर हरिद्वार चले गए। उन्होंने सोचा, थोड़े-से दिन जीवन के शेष हैं, उन्हें क्यों न हरिद्वार में बिताया जाय। उन्हें रामानंद की बात लग-सी गई थी। यद्यपि धन-संपत्ति सभी कुछ उन्हीं का अर्जित किया हुआ था, फिर भी वह घर को कलह में डालकर बरबाद न करना चाहते थे।

चलते समय आँखों में आँसू भरे हुए कृष्णानंद ने उनके हाथ में पाँच हज़ार के नोट रखते हुए कहा—"कष्ट न उठाइएगा बाबूजी! अब आश्रम से कमला को लेकर रहिएगा।"

रामेश्वरनाथ की आँखों में भी आँसू आ गए। कमला बहुत उदास थी। वह भरे हुए हृदय से सभी से मिली। रामानंद के हृदय में भी बहन के लिये एक स्वाभाविक टीस थी, किंतु वह जान-बूझकर घर से कहीं चले गए। उन्हें कमला के सामने आने में कुछ लज्जा-सी लग रही थी।

रात के सन्नाटे में रामेश्वरनाथ अपनी इकलौती पुत्री को लेकर भरे हुए हृदय से चुपचाप शहर के बाहर चले गए।

कमला के चले जाने के बाद सभी को उसकी याद आई। त्रिवेणी बोली—"बात ही ऐसी आ पड़ी थी, नहीं तो जान-बूझकर कोई अपने आदमी को घर से इस प्रकार बिदा कर देता है। कमला का भाग्य!"

सुमित्रा उदास भाव से बोली—"बाबूजी को भी इस अवस्था में कष्ट लिखा था। आराम से बेचारे रह रहे थे। परदेश में आराम कहाँ?"

रामानंद चुप रहे। कृष्णानंद ने कहा—"कमला का भी जीवन बरबाद हो गया। बाबूजी ने भी हरिश्चंद्र को घर में रखकर आस्तीन में साँप पाला था। हमारी मूर्खता ही से ऐसा हुआ। यदि हरिश्चंद्र ही से कमला का विवाह हो जाता, तो कुछ बुरा न रहता?"

रामानंद ने कहा—"तो इसमें भी तो दोष बाबूजी का ही है। हम लोग तो इसका विरोध करना भी न चाहते थे। केवल बाबूजी के ही विरोध से ऐसा हुआ।"

कृष्णानंद बोले—"कमला ने खुलकर बाबूजी से कह दिया था—"मैं हरिश्चंद्र से विवाह करना चाहती हूँ, किंतु बाबूजी ने उसकी बात नहीं मानी।"

त्रिवेणी बोल उठी—"उसी का फल तो उन्हें भोगना पड़ रहा है।"

कृष्णानंद ने कहा—"बाबूजी क्या जानते थे कि हरिश्चंद्र उनके साथ ऐसा व्यवहार करेगा। उन्होंने तो उसे बेटे की

तरह पाला था। क्या किया जाय? कुछ संसार की प्रवृत्ति ही ऐसी है।"

सुमित्रा बोली—"उस दिन कमला की तबियत ठीक थी। मेरे पास बैठी हुई बात कर रही थी। थोड़ी ही देर में पता चला कि वह हरिश्चंद्र के साथ कहीं गई हुई है। उसे भी धोखा दिया हरिश्चंद्र ने।"

मुँह बनाकर त्रिवेणी धीरे से बोली—"भगवान् जाने, किसने किसको धोखा दिया। जो कुछ कोई कहता है, हम सुन लेते हैं।"

रामानंद को छोड़कर और किसी को त्रिवेणी की यह बात अच्छी नहीं लगी। कृष्णानंद उठकर चले गए।

हरिद्वार पहुँचने पर रामेश्वरनाथ का चित्त कुछ हलका हुआ। उन्होंने गंगाजी के निकट ही एक अच्छा-सा मकान ले लिया, और उसमें रहने लगे। साथ में वह अपने पुराने नौकर दुर्गा को भी ले गए थे। अतएव उससे उन्हें बड़ा आराम मिला।

कमला भी निश्चित रूप से घर का काम-काज करती, और फिर बाद में लेटकर पुस्तकें तथा समाचार-पत्र पढ़ती रहती। उसका भी चित्त लग गया। कभी-कभी जब अपना अतीत और भविष्य सोचती, तो घंटों मौन रहकर विचार-सागर में डूबी रहती। उसने जीवन पर दृष्टि डालकर यह देखने की चेष्टा की कि आखिर उसने कहाँ, कब और क्या ग़लतियाँ की हैं।

उसने अपने उन दिनों की याद की, जब वह हरिश्चंद्र की बात घंटों सोचा करती तथा उसके प्रेम में गोते खाया करती ? उस समय उसको पूरा विश्वास हो गया था कि वह और हरिश्चंद्र एक दिन अवश्य एक होंगे। ४-६ वर्ष तक इसी मधुर कल्पना में गोते खाने के बाद सहसा उस पर आघात हुआ। पिताजी ने इस विवाह का घोर विरोध करके उसकी कल्पनाओं को चकनाचूर कर दिया।

कमला को एकाएक पिता पर क्रोध आ गया। मेरे विनाश के पिताजी ही तो कारण हैं। किंतु··· किंतु···!"

वह शांत हो गई। फिर···फिर आई मेरे विवाह की बात। उन दिनों हरिश्चंद्र कितना उदास हो गया था। वह बात करते ही रो-सा पड़ता था। उसने कितनी खुशामदें कीं मेरी। किंतु पिताजी के प्रेम, स्नेह और प्रतिष्ठा के आगे मैं कुछ न कर सकी। अपना सब कुछ खोकर मैं विष का घूँट पी गई। मेरा विवाह हो गया।

किंतु क्या मैं उनसे प्रेम कर सकी ? उन्होंने मेरे स्वागत के लिये पलकें बिछाईं, अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया मुझ पर, मुझे राजरानी बनाया, किंतु मैं ? मैं क्या उसका प्रतिदान दे सकी ? नहीं, बदले में उन्होंने मुझसे पाई प्रतारणा, कटु वाणी और कलह ! मैं समझ रही थी कि मैंने उन पर बड़ा भारी एहसान किया है, जो उनसे विवाह किया। वह सब कुछ सहते गए, मेरी सभी अनुचित बातों को, मेरे शुष्क

व्यवहार को उन्होंने हँसकर प्रेम में परिवर्तित किया। उसे प्यार का चिह्न समझा। उन्हें क्या पता कि मेरे हृदय में कालिमा थी, वाणी में विष था। किंतु फिर लौटा मेरा दुर्भाग्य उस हरिश्चंद्र ने, जिसे मैंने कभी जीवन से अधिक प्रिय समझा, मेरा सोने का संसार धूल में मिला दिया। अपना जीवन भी नष्ट किया और मेरा भी।

किंतु फिर-फिर…बेचारा हरिश्चंद्र। मेरे ही कारण कलकत्ते में लोगों ने उससे दुश्मनी बाँधी, उसका रहना मुश्किल कर दिया। अंत में मेरे ही कारण उसे जेल में चक्की पीसनी पड़ी, और आज वह कदाचित् दाने-दाने को मोहताज होकर कलकत्ते की गलियों में मारा-मारा फिर रहा होगा।

कमला उठकर बैठ गई। आज उसके मस्तिष्क में अतीत के चित्र घूम रहे थे। शाम हो गई थी, किंतु वह लेटी रही।

नौकर ने आकर स्विच दबा दिया।

"चाय पिएँगी बीबीजी ?" दुर्गा ने पूछा।

"नहीं।"

दुर्गा चला गया। कमला फिर सोचने लगी—और सरला ? कितने सरल स्वभाव की और मीठा बोलनेवाली है ? मेरी और उसकी तुलना ? असंभव। मेरे हृदय की पीड़ा क्या कम हो सकेगी वहाँ रहकर। यह संभव नहीं कि सरला के रहते हुए मैं अपना स्थान पा जाऊँ ? किंतु……किंतु……

एकाएक उसे व्रजकिशोर की याद आई। उसने मेरे साथ क्या बुराई की? वह मुझसे प्रेम करता था, किंतु क्या मैं अब प्रेम करने योग्य हूँ? बेचारा सीधा-सादा......किंतु......यदि मै उसके साथ इतना सख्त व्यवहार न करती। हरिश्चद्र. . वह...सभी से अधिक तो वह मुझसे प्रेम करता था. . मैं ..मैं...मैं...

"क्या हो रहा है बेटी। आज क्या घूमने न चलोगी?" एकाएक वृद्ध नें कमरे में प्रवेश करके कहा।

कमला लेटे-ही-लेटे बोली—"मैं न जाऊंगी बाबूजी! आज तबियत कुछ अलसा गई है।"

उसके माथे पर हाथ रखते हुए पिता ने कहा—"तबियत तो ठीक है न?"

"हाँ, ठीक है।" कमला बोली।

वृद्ध ने कहा—"अनावश्यक चिंता में तू न पड़ा कर कमला! तुझे क्या कुछ तकलीफ है कमला?"

"आपके पास रहकर मुझे क्या तकलीफ हो सकती है बाबूजी? मैं ही आपकी तकलीफ का कारण बन गई हूँ।" कहते-कहते कमला के आँसू आ गए।

वृद्ध बोले—"मुझे क्या कष्ट है कमला? इस अवस्था में काशी न सही, हरिद्वार सही। तू क्यों परेशान होती है?"

कमला चुप रही। वृद्ध चुपचाप कमरे के बाहर हो गए।

(६)

इधर कमला जब चली गई, तो जगत बाबू का चित्त उद्विग्न हो गया। अब उन्होंने अनुभव किया कि चुनाव ने उनके और कमला के बीच एक बड़ी-सी खाईं खोद दी है। वह समझते थे कि कमला का नगर का एकच्छत्र नेतृत्व नष्ट होने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। वह दिन-रात कमला ही के विषय में सोचते तथा इसी समस्या में संलग्न रहते। उन्हें यह भी न मालूम था कि कमला आखिर गई कहाँ?

जगत बाबू से भी बुरी दशा ब्रजकिशोर की थी। उन्होंने कमला की काफी खोज की, किंतु सब व्यर्थ! उनके हृदय में इस बात का बड़ा पश्चात्ताप था कि कमला उन्हीं के कारण नगर छोड़कर चली गई। वह एक प्रकार से कमला के पीछे पागल-से हो रहे थे। कांग्रेस के दफ्तर में भी वह ४-४ दिन तक न जाते थे। काम करने में उनका मन न लगता था। गिरिजा भी परेशान थी, किंतु वह पति की बेचैनी का कुछ-कुछ कारण समझती थी। ब्रजकिशोर का स्वास्थ्य भी गिर गया था। देखने से वह बीमार मालूम पड़ते थे। उनकी यह दशा देखकर सभी आश्चर्य करते थे। अंत में एक दिन परेशान होकर उन्होंने मंत्रिपद से इस्तीफा दे दिया। धीरे-

धीरे उनकी आर्थिक स्थिति भी बिगड़ चली। ट्यूशन छूट गए तथा समाचार-पत्रों में लिखना-पढ़ना भी छूट चला। जब गिरिजा उनके सामने रोती-धोती, तो वह मौन रहते। सदैव बगुला-जैसे श्वेत खद्दर के कपड़े पहननेवाले ब्रजकिशोर मैले कपड़े पहने पड़े रहते।

एक दिन गिरिजा ने रुआसी-सी होकर कहा—"आखिर आपने अपनी यह दशा क्यों बना रक्खी है?"

सूखी हँसी हँसकर वह बोले—"कैसी दशा?"

"यही जो आपकी हो रही है। आखिर घर का खर्च कैसे चलेगा?"

अब ज़रा गंभीर होकर ब्रजकिशोर बोले—"तो मैं क्या करूँ? तुम्हारा मन न लगता हो, तो अपनी मा के घर चली जाओ कुछ दिन के लिये।"

"आपको इस दशा में छोड़कर चली जाऊँ? कैसी बातें कर रहे हैं आप।" गिरिजा रोती हुई बोली।

ब्रजकिशोर ने कहा—"मुझे तुम्हारे जाने से कोई तकलीफ़ न होगी। मैं तो कुछ दिन आराम करना चाहता हूँ।"

"तो आप भी वहीं चलकर आराम कीजिए न? क्या आपको कोई असुविधा होगी?"

"मैं अभी कहीं न जाऊँगा गिरिजा! तुम शौक़ से जा सकती हो।"

"तो मैं भी कहीं न जाऊँगी।"

"अच्छी बात है।"

किंतु इसके थोड़े ही दिन बाद गिरिजा का भाई उसे आकर लिवा ले गया। ब्रजकिशोर ने शांति की साँस ली।

एक दिन कपड़े-लत्ते बदलकर ब्रजकिशोर शाम को घूमने निकले। आज लगभग १५-२० दिन के बाद वह घर से बाहर निकले थे। कंपनी बाग़ में बैठकर वह फिर अपनी ही चिंता में निमग्न हो गए।

उन्होंने सोचा—क्यों न एक बार जगत बाबू से मिलकर कमला का पता लगाया जाय। इसमें हर्ज ही क्या है।

बस, उठकर सीधे जगत बाबू के घर पहुँच गए। काफ़ी अँधेरा हो चुका था। जगत बाबू कहीं बाहर से आए थे, और अपनी बैठक में कपड़े उतार रहे थे।

ब्रजकिशोर को देखकर वह बोले—"आइए मंत्रीजी, आज इधर कैसे भूल पड़े?"

कुरसी पर बैठते ही ब्रजकिशोर बोल उठे—"ज़रा आपसे कमला का पता पूछना चाहता था।"

कमला का नाम सुनते ही जगत का चेहरा गंभीर हो गया। वह भौंवों को तानकर बोले—"कहिए, आपका उनसे क्या काम है?"

ब्रजकिशोर बोले—"वह एकाएक यहाँ से चल दीं। मैं जानना चाहता था कि वह गईं कहाँ।"

जगत ने क्षुब्ध स्वर से कहा—"हाँ-हाँ, यह मैं जानना चाहता

था कि आखिर आप उनका पता जानने के लिये क्यों उतावले हैं ?"

ब्रजकिशोर बोले—"वह मेरी मित्र थी।"

मुँह बनाकर जगत ने कहा—"मित्र या प्रेमिका ?"

आँखें फाड़कर ब्रजकिशोर ने जगत की ओर देखा, और कहा—"आप क्या बातें कर रहे हैं।"

ज़रा तेज होकर जगत ने कहा—"सुनिए ब्रजकिशोरजी, मैं इतना उल्लू नहीं हूँ। खद्दर की पोशाक में लंपटों के रहने की बात जो कही जाती है, वह आपके विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। ख़बरदार, जो मेरे सामने अब कमला की बात की।"

ब्रजकिशोर पर इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। वह साधारण ढंग से बोले—"मगर इसमें आपके लिये बिगड़ने की क्या बात है ?"

जगत बाबू अब ज़रा और गरम होकर बोले—"आप ही जैसे महापुरुषों ने तो उसे बिगाड़ दिया है।"

हँसकर ब्रजकिशोर बोले—"और आप ही ने कौन उसे सुधार दिया है। सच पूछो, तो उसे सर्वनाश की ओर ले जानेवाले आप ही हैं।"

बाँहों को चढ़ाते हुए क्रोध से जगत बाबू बोले—"तेरी इतनी मजाल। मुझसे ही और मेरी···"

और वह चुप हो गए। उनका गुस्सा ठंडा हो गया।

ब्रजकिशोर ने कहा—"इतना गरम होने की आवश्यकता नहीं। मैंने स्वयं उसे अपनी आँखों से आपकी गोद में लेटे देखा है। आप ऊपर से मुझी पर रुआब दिखा रहे हैं।"

जगत बाबू सँभल गए। ब्रजकिशोर का हाथ पकड़ते हुए बोले—"इन बातों का ज़िक्र मत करो ब्रजकिशोर बाबू! अब तुमसे क्या बताऊँ कि वह मेरी…"

मुस्किराकर ब्रजकिशोर बोले—"मुझे मालूम है कि वह आपकी प्रेमिका थी।"

"कमला मेरी प्रेमिका नहीं, वरन् स्त्री थी। मेरी ब्याही हुई स्त्री।" जगत बाबू आवेश में कह गए।

"ए! स्त्री कमला आपकी स्त्री थी!"—आश्चर्य से ब्रज-किशोर कह गए।

बगल के कमरे में खड़ी हुई सरला ने यह वाक्य स्पष्ट रूप से सुना।

आश्चर्य के साथ उसके मुँह से निकला —"कमला इनकी स्त्री है! एँ!"

वह बैठक में आ गई, और ज़ोर से बोली—"कमला आपकी स्त्री थी, क्या यह सच है?"

ब्रजकिशोर चौंककर खड़े हो गए। सरला ने पति का हाथ ज़ोर से पकड़कर कहा—"बतलाइए, बतलाइए, क्या कमला आपकी स्त्री है? बतलाइए।"

जगत बाबू मौन थे। थोड़ी देर बाद उनके मुँह से धीरे से निकला—"हाँ, कमला मेरी स्त्री है!"

सरला को चक्कर आ गया, और वह फ़र्श पर गिर गई।

धीरे से उठकर ब्रजकिशोर कमरे से बाहर हो गए।

---

(७)

कमला की उद्विग्नता अब कुछ कम हो चली थी। वह दिन-भर लिखती-पढ़ती, काम में लगी रहती तथा सवेरे-शाम गंगा-तट पर घूमने निकल जाती। रामेश्वरनाथ का भी कार्य-क्रम कुछ निश्चित-सा हो गया था। वह सवेरे गंगा-तट पर निकल जाते। स्नान करते तथा घंटों तट पर तथा मंदिरों में पूजा करते रहते। लगभग १ बजे घर लौटते। भोजन करके विश्राम करते, और समाचार-पत्रों को देखते। शाम को ४-५ बजे फिर निकल जाते, तथा पूजन और दर्शन में अपना समय व्यतीत करते।

हरिद्वार आए इन लोगों को लगभग ६ मास हो गए थे। इस बीच दोनो ही को शारीरिक और मानसिक लाभ हुआ।

उस दिन दोपहर को रामेश्वरनाथ ने कहा—"मेरी इच्छा होती है कि कुछ दिनों के लिये काश्मीर चला जाय। जब भ्रमण के लिये निकले हैं, तो पृथ्वी में स्वर्ग कहलानेवाली भूमि को देखकर नेत्रों को क्यों न सार्थक करें। थोड़े दिनों में लौट आवेंगे।"

कमला बोल उठी—"मैं भी यही कहनेवाली थी। यदि आपकी आज्ञा हो, तो तैयारी करूँ।"

पिता बोले—"अवश्य।"

अगले रविवार को काश्मीर जाने का निश्चय हो गया। यद्यपि यात्रा के ५ दिन बाक़ी थे, फिर भी कमला ने तैयारी शुरू कर दी।

शाम को कुछ आवश्यक सामान ख़रीदने के लिये कमला बाहर निकली। साथ में दुर्गा था।

बहुत-सा यात्रा का सामान लेकर जब वह लौट रही थी, तो पीछे से किसी ने पुकारा—"कमला!"

घूमकर कमला ने देखा।

ब्रजकिशोर!

दुबले-पतले, चेहरे से रुग्ण, साधारण-से मैले कपड़े पहने, एक पतली-सी छड़ी के सहारे खड़े हुए।

"मंत्रीजी, आप!" कमला के मुँह से निकला।

सूखी हँसी हँसकर ब्रजकिशोर बोले—"हाँ, मैं हूँ। क्या विश्वास नहीं होता?"

कमला ग़ौर से उन्हें तथा उनका परिवर्तन देख रही थी।

"क्या आज ही आई हो यहाँ?" ब्रजकिशोर ने धीरे से पूछा।

"नहीं—हाँ—हाँ, कुछ दिनों से यहीं रहती हूँ। आप कब आए, कब लौटेंगे?" कमला पूछ गई।

हलकी-सी गंभीर मुसकान के साथ ब्रजकिशोर ने कहा—

"हाँ, कल ही आया हूँ, कदाचित् अपने जीवन के दिन पूरे करने के लिये। अब शांति के साथ मर सकूँगा।"

कमला को क्षण-भर के लिये उस पर दया आ गई। बोली—'मरने की क्या आवश्यकता है व्रजकिशोर बाबू! हम सभी मरना चाहते हैं, किंतु यह हमारे हाथ में नहीं है। जिस लिये हमारा निर्माण हुआ है, उसकी पूर्ति के बाद ही मृत्यु हमारे पास आ सकेगी। खैर, कहाँ ठहरे हैं आप? मैं इस समय जल्दी में हूँ। आप सबेरे मेरे घर आइए, तब बात करूँगी।"

व्रजकिशोर चुप खड़े रहे। कमला ने उन्हें अपने घर का पता बता दिया, और बोली—"इस समय मेरा रुकना ठीक नहीं है। अब चलूँगी।"

वह धीरे से आगे बढ़ गई। घर पहुँच कर वह भारी हृदय से चारपाई पर लेट गई। दुर्गा ने पूछा—"चाय लाऊँ?"

कमला बोली—"इच्छा नहीं है।"

इतने दिन शांत रहने के बाद कमला के हृदय में फिर उथल-पुथल प्रारंभ हुई। आज उसने व्रजकिशोर को जिस दशा में देखा, वह भूल न सकी। उसे याद आया उनका वह रूप, जब वह उनके साथ कांग्रेस-कमेटी में काम करती थी—रोब से दमकता हुआ चेहरा, कार्य-संलग्नता से चुस्त शरीर तथा विमल वस्त्रों से मंडित इकहरा बदन। और आज? तो फिर क्या यह सब कुछ हुआ उसी के कारण? उसे रुलाई-सी आ गई।

आज उसे यह चिंता हुई कि उसका भविष्य क्या है ? उसके जीवन के सारे खेल अधूरे ही रहे। वह प्रेम की दुनिया में दीवानी हुई, वह अधूरा ही रह गया; पति के साथ-वाला भी अभिनय बिना यवनिका गिरे ही समाप्त हो गया ; राजनीतिक प्रगति भी एक ही धक्के से शून्य में परिणत हो गई, और अनजाने में जो एक व्यक्ति उसके जीवन में आ गया, वह मरणासन्न होकर हरिद्वार की गलियों में भटक रहा है। दुर्भाग्य !

कमला के हृदय के तार जोर-जोर बजने लगे। वह करवटें बदलकर उन्हें शांत करने का प्रयत्न करने लगी। उसने सोचा, इस समय वह लक्ष्य-हीन है। उसे मार्ग-प्रदर्शक चाहिए, किंतु वह राह में स्वयं उसे ही लूटनेवाला न हो। किंतु क्या मंत्रीजी ? उन्होंने तो अपना विश्वास खो दिया है। किंतु इसमें उनका दोष ? वह भी मनुष्य हैं, उन्हें संयम-हीन करने में मेरा ही तो हाथ है। वह मेरे ही कारण स्थान से गिरे, पथ से गिरे, पद-च्युत हुए, तथा...उन्हें देखकर कितनी दया आती है। कैसा मलिन वेष, उजड़ा हुआ स्वास्थ्य... किंतु यह क्या।

कमला अनुभव करने लगी कि वास्तव में ब्रजकिशोर के लिये उसके हृदय में एक स्थान बन गया है। क्या ही अच्छा होता, यदि दोनो एक साथ रह सकते होते—संसार की चहल-पहल से बहुत दूर। वह स्पष्ट रूप से अनुभव कर रही थी,

कि यदि हृदय में किसी के लिये स्थान न बन सका, तो वह जगत बाबू के लिये। हरिश्चंद्र के लिये हुआ, किंतु वह तो व्यर्थ हुआ। और, ब्रजकिशोर……छिः……

कमला उठकर बैठ गई। ऐं, आज वह किधर जा रही है? ऐसे भाव तो उसके हृदय में कभी उत्पन्न ही नहीं हुए थे। हरिश्चंद्र के साथ इतने दिन रहकर भी उसने कुछ न खोया। किंतु आज ब्रजकिशोर के प्रति ऐसी भावना?

उसे अपने ही पर क्रोध आने लगा। उसने ब्रजकिशोर से क्यों बात की? उसे अपने घर क्यों बुलाया? नहीं, वह उनसे कदापि न मिलेगी। वह पुरुष-जाति से घृणा करेगी… पर……ऐसा क्यों?

उसने सोचा—पुरुष-जाति ने उसके साथ कौन-सा बुरा व्यवहार किया है? मैंने ही हरिश्चंद्र को धोखा दिया; उसको प्रेम और विवाह का आश्वासन देकर बरबाद कर दिया। मुझे साथ ले जाने के बाद भी उसने मेरे साथ अच्छा ही व्यवहार किया, और मेरी ही रक्षा करने में बेचारा जेल काट रहा है। मैंने फिर उसकी खोज-खबर भी न ली। मेरे पति ने मेरे सामने सदैव पलकों को बिछाया, किंतु मैंने सदैव उन पर अपना बना हुआ प्रेम प्रकट किया। इतने बड़े कांड के बाद भी वह मुझे आश्रय देने को तैयार हो गए; किंतु मैंने उन्हें कष्ट ही दिया। मैं—मेरे लिये अब कहाँ स्थान मिलेगा। ओफ्!

कमला एकाएक सिहर उठी। और अब ? बेचारा ब्रजकिशोर मेरे लिये बरबाद हुआ, और·······

उसका हृदय ब्रजकिशोर के लिये नरम पड़ा। उसने सोचा—उन्होंने क्या नहीं किया मेरे लिये। दिल्ली नगर में मेरे नाम का सिक्का चला दिया। आज यदि वह (जगत बाबू) मेरे बीच में न आए होते, तो मेरा मार्ग साफ था। मैं कहीं-की-कहीं पहुँच गई होती। कितना बड़ा ऋण है उनका मुझ पर। उन्होंने अपनी पत्नी की अपेक्षा मुझे आगे बढ़ाया, सदा मेरा मान किया, और इसके बदले मैंने उनके साथ कैसा व्यवहार किया, और आज वह मेरे लिये······

कमला का हृदय रो पड़ा ब्रजकिशोर की दशा याद करके। इतना सज्जन, इतना कर्मठ्य, इतना प्रेमी······

और दाँतों-तले जीभ दबाकर कमला चुप हो गई।

उस दिन रात-भर उसके मस्तिष्क में ये ही सारी बातें चक्कर काटती रहीं। वह स्वप्न देखने लगी—

उसने देखा, वह अँधेरे में जा रही थी। सहसा किसी वस्तु की ठोकर पैर में लगने से वह रुक गई। उसने ग़ौर से देखा, वह ब्रजकिशोर का शव था।

वह चीखकर उठ बैठी। उसका हृदय धक्-धक् करने लगा। उसने उठकर बिजली जलाई, और आकर पलँग पर लेट गई। थोड़ी देर बाद वह फिर सो गई।

फिर स्वप्न !

उसने देखा, ब्रजकिशोर दोनो बाहुएँ फैलाए उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। निकट पहुँचकर उसने उसे आलिंगन में ले लिया, किंतु आश्चर्य के साथ कमला ने देखा—

ब्रजकिशोर का वह शरीर मुंड-विहीन था।

वह चिल्ला पड़ी।

बग़ल के कमरे में रामेश्वरनाथ सो रहे थे। उनकी नींद कमला की पहली चीख़ से खुल गई थी। दुबारा उसकी चीख़ सुनकर वह कमरे में आकर बोले—"क्या है बेटी?"

कमला धीरे से बोली—"कोई बात नहीं है बाबूजी! यों ही सपने में डर गई थी।"

रामेश्वरनाथ थोड़ी देर तक उसका जी बहलाते रहे, फिर जाकर लेट गए।

उन्होंने एक ठंडी साँस ली।

कमला को फिर नींद नहीं आई। उसके हृदय में बार-बार यह उठ रहा था कि ब्रजकिशोर की मृत्यु निश्चित है। तर्क और मनोविज्ञान के हिंडोले में कमला झूल रही थी। वह सोचकर भी अपना भविष्य निश्चय न कर पाती थी। वह शांति-लाभ के लिये हरिद्वार आई थी, किंतु इस समय जीवन की सबसे बड़ी अशांति उसके हृदय में केंद्रित थी। वह क्या करे?

(८)

जगत बाबू ने उस दिन सारी कथा सरला को ज्यों-की-त्यों सुना दी।

धैर्य और आश्चर्य के साथ सारी घटना सुनकर सरला बोली—"विचित्र-सी है कहानी ! आखिर आपने सब कुछ मुझसे पहले ही न कहकर ही तो यह सब परिस्थिति पैदा कर दी।"

जगत बाबू गंभीर होकर बोले—"मैंने बहुत प्रयत्न किया कि वह यहाँ ठहरे, किंतु अपने स्वभावानुकूल वह जो जी में आया, करती रही।"

सरला कुछ सोचकर बोली—"किंतु मैं तो उन्हें किसी भी दशा में यहाँ से न जाने देती। पहले वह, और फिर बाद में मैं।"

जगत बोला—"यह तो मैं तब तुमसे कहता, जब वह यहाँ रहने को राजी हो जाती।"

सरला बोल उठी—"यह काम तो मेरा था न ? अब मेरी समझ में आ रहा है कि उनका मेरे प्रति इतना शुष्क व्यवहार क्यों था।"

जगत ने कहा—"किंतु मेरे प्रति भी तो वह अपने व्यव-

हारों में परिवर्तन न कर सकी। ब्रजकिशोर के फंदे में पड़कर उसने मुझसे भी तो लड़ाई ठानी।"

सरला बोली—"और, आपने ही कौन बड़ा अच्छा व्यवहार उनके साथ किया। आपको उन्हें यहाँ से जाने ही न देना चाहिए था।"

जगत चुप रहे। सरला ने पूछा—"किंतु वह गई कहाँ? इसका भी पता लगाने की आपने कभी चेष्टा की?"

जगत बोले—"देखो सरला, हरएक बात की एक सीमा हुआ करती है। मैंने सदैव उसके अपराधों को क्षमा किया, सांत्वना दी, तथा अपनी आँखें बिछाईं। मैं जानता हूँ, कमला से कभी उसका प्रतिदान नहीं मिला। मैं सच कहता हूँ, आज कदाचित् कमला के हृदय के किसी भी कोने में अपने लिये स्थान नहीं देखा। मैं जानता हूँ, वह मानिनी है, सोने की तरह खरी और पवित्र है, किंतु मेरे भी तो धैर्य की सीमा होनी चाहिए।"

सरला सब कुछ धैर्य-पूर्वक सुनकर बोली—"मैं तो इस विषय में कुछ कह नहीं सकती, किंतु इतना अवश्य कहूँगी कि उन्हें यहाँ से जाना न चाहिए था। अपना घर अपना ही घर होता है।"

जगत सिर खुजाते हुए बोले—"और, अब मैं उसे कहाँ ढूँढ़ूँ? अपने पिता के घर वह जा नहीं सकती। संसार की दृष्टि में वह मर चुकी है, फिर जायगी कहाँ? मैं तो

उसका साहस देखकर परेशान हूँ। जहाँ जायगी, कष्ट सहेगी।"

सरला सुनती रही। जगत बहुत दुखी होकर बोले—"इसे उसका दुर्भाग्य न कहूँ, तो और क्या कहूँ? मैं सच कहता हूँ सरला, मैंने यह जानते हुए भी कि वह मुझसे प्रेम नहीं करती, सदैव उसके प्रति स्नेह-भाव रक्खा है।"

जगत के आँसू आ गए। सरला एक ठंडी साँस लेकर बोली—"तो फिर एक बार हमको उनका पता अवश्य लगाना चाहिए। आखिर जायँगी कहाँ?"

जगत चुप रहे। सरला बोली—"मुझे कमला जीजी के साथ रहने में आपत्ति होगी, इस बात को आप क्षण-भर के लिये भी हृदय में स्थान न दीजिएगा। आपको मेरी सौगंद है, जो उनका पता लगाने में आप जरा भी ढिलाई करें।"

जगत बाबू बोले—"ऐसी बात नहीं है सरला! तुम्हीं बताओ, आखिर मैं उसे कहाँ ढूँढूँ? मेरा विचार था कि ब्रजकिशोर को उसका पता मालूम होगा, किंतु वह भी ग़लत निकला।"

सरला चुप हो गई। जगत फिर बोले—"यह सब भाग्य का फेर है, नहीं तो मेरे पास पहुँचकर भी उसे ठोकरें खाने की क्या आवश्यकता थी। उसके पिता भी इतने संपन्न व्यक्ति हैं कि वह भी उसकी सहायता कर सकते थे, किंतु मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह वहाँ कभी न जायगी। यदि उसे पिता ही के यहाँ जाना होता, तो वह यहाँ कभी न आती।"

सरला दबी ज़बान से बोली—"और हरिश्चंद्र ?"

जगत बाबू झट बोल उठे—"उसका तो प्रश्न ही नहीं उठता। कमला ही के द्वारा। मुझे मालूम हुआ कि कलकत्ते में अपने मालिक की हत्या के अभियोग में वह अलीपुर-जेल में ७ वर्ष की सज़ा भुगत रहा है। कदाचित् मालिक ने कमला के प्रति बुरे भाव प्रकट किए थे, अतएव हरिश्चंद्र ने उसकी हत्या कर डाली।"

सरला ने एक लंबी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—"वाह री महामाया !"

जगत बोला—"कमला के कार्य-क्रम का पता चलना कठिन है। मैं तो......"

और इतने में गिरिजा ने आकर उन दोनों को प्रणाम किया। जगत बाबू उसे पहचानते थे, किंतु फिर भी उसे सरला के पास छोड़ कमरे के बाहर जाने लगे।

गिरिजा बोली—"आप ही से काम है, जगत बाबू !"

जगत रुककर बोला—"कहिए।"

गिरिजा ज़रा रुककर बोली—"आपको कमला का पता मालूम है ?"

आश्चर्य से जगत बाबू ने पूछा—"क्यों ?"

गिरिजा ज़रा संकोच के साथ बोली—"आपको कदाचित् मालूम होगा कि इधर कुछ दिनों से मेरे पति का स्वास्थ्य ठीक न था। मैं कुछ दिनों के लिये अपने पिता के यहाँ चली गई

थी लौटकर आई, तो पता चला कि वह लगभग २० दिन हुए, न-जाने कहाँ ग़ायब हो गए हैं।"

जगत बाबू ने पूछा—"फिर आप कमला को क्यों पूछ रही हैं?"

ज़रा संकोच प्रकट करते हुए गिरिजा ने कहा—"अब आपसे क्या छिपाऊँ? वह कमला के पीछे पागल हो रहे थे। क्षमा कीजिएगा, कमला ने मेरा बना-बनाया घर उजाड़ दिया। मेरा तो विचार है कि वह कमला ही के पास गए हैं।"

कहते हुए गिरिजा की आँखों में आँसू आ गए। जगत बाबू को मानिक पीड़ा हुई। वह जानते थे कि इसमें अधिक दोष ब्रजकिशोर ही का है, किंतु वह उनकी स्त्री से क्या कहें? ब्रजकिशोर उस दिन स्वयं कमला का पता पूछने आए थे।

वह प्रकाश्य में बोले—"ब्रजकिशोर बाबू एक दिन यहाँ आकर स्वयं कमला का पता पूछ रहे थे, किंतु मुझे स्वयं नहीं मालूम कि वह कहाँ गई?"

गिरिजा आँसू पोंछते हुए बोली—"मैंने समझा था, आपको अवश्य उनका पता मालूम होगा, क्योंकि कदाचित् वह आप ही रिश्तेदार भी हैं......"

बात समाप्त करने की नियत से जगत बाबू बोले—"रिश्तेदार तो अवश्य हैं, किंतु मैं इस समय बिलकुल नहीं जानता कि वह कहाँ चली गई।"

गिरिजा कुछ देर तक खड़ी रही, फिर नमस्ते करके चली गई।

उसके जाने के बाद जगत के मुँह से निकला—"वाह री कमला !"

सरला बोली—"किंतु जहाँ तक मैं उन्हें समझ सकी हूँ, वह इन बातों में नहीं हैं। व्रजकिशोर चाहे जैसे भी हों।"

एक साँस लेकर जगत बोले—"किंतु इस संसार में कोई किसी के विषय में कोई भी बात निश्चित रूप से नहीं कह सकता।"

(९)

सबेरे ज्यों ही कमला स्नानागार से वस्त्र बदलकर निकली, वैसे ही दुर्गा ने कहा—"एक बाबू आए हैं।"

कमला ज़रा देर से सोकर उठी थी। वह समझ गई कि आगंतुक ब्रजकिशोर हैं।

"बैठक में उन्हें बिठला। मैं आ रही हूँ।" कहकर कमला दूसरे कमरे में चली गई। उसने घड़ी में देखा, लगभग ९ बज चुके थे।

कमला का चित्त रात की स्वप्न घटना से परेशान था। ब्रजकिशोर को आया देख उसका जी धड़कने लगा।

उसने बैठक में धीरे से प्रवेश किया। ब्रजकिशोर हथेली पर गाल रक्खे एक कुरसी पर बैठे हुए थे। आज वह उतने मलिन न थे। कपड़े भी साफ़ पहने हुए थे।

कमला ने जाकर कहा—"क्षमा कीजिएगा, ज़रा स्नान कर रही थी।"

ब्रजकिशोर चौंक-से पड़े। बोले—"कोई बात नहीं। मैं तो अभी आया हूँ।"

कमला चुपचाप बैठ गई। ब्रजकिशोर धीरे से बोले—"मैं आपका अधिक समय न लूँगा। मैं जिस परिस्थिति में हूँ,

वह मैं स्वयं जान रहा हूँ। अब कदाचित् ही घर लौटूँ। मैंने सोचा, यदि मरना ही है, तो हरिद्वार ही में चलकर क्यों न रहा जाय। किंतु—किंतु .....”

वह आगे न बोल सके। उनका गला भर-सा आया था। कमला चुपचाप बैठी उनकी बात सुन रही थी।

कुछ देर ठहरकर वह फिर बोले—“किंतु सोचा कि मरने के पहले आपसे क्षमा माँग लेना आवश्यक है। मैंने जो उस दिन अपने स्वभाव के प्रतिकूल साहस किया था, और आपके हृदय को धक्का पहुँचाया, उसके लिये मैं अपराधी हूँ। क्षमा मिल जाने से कदाचित् इन अंतिम घड़ियों में भी मुझे कुछ शांति मिल सके।”

और वह चुप हो गए। कमला के मुँह से बोल न निकला। बार-बार उसके सामने ब्रजकिशोर की स्वप्नवाली शक्ल सामने आ जाती थी।

ब्रजकिशोर फिर बोले—“कदाचित् मेरे यहाँ रहने से आपकी कोई क्षति हो, अतएव मैं शीघ्र ही यहाँ से चला जाना चाहता हूँ। मैं आपके पति से भी क्षमा माँग आया हूँ।”

कमला मानो आकाश से गिरी। तब क्या इन्हें मालूम हो गया कि मैं उनकी स्त्री हूँ?

ब्रजकिशोर बोले—“मुझे पहले मालूम न था कि कमल बाबू आपके पति हैं। यदि कदाचित् मुझे पहले ही से मालूम हो जाता, तो मेरी यह दशा न होती!”

कमला के दिल पर फिर एक चोट-सी लगी। वह धीरे से बोली—"किंतु आपको यह सब जानने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यदि यह सब न होता, तो अच्छा था।"

ब्रजकिशोर बोले—"जो कुछ होना था, वह हो गया। अब उन दुःखदायी बातों को करने से कोई लाभ नहीं। बात यह है ..."

बात काटकर कमला बोली—"मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपने मुझमें ऐसी कौन-सी बात पाई, जिससे उस दिन आपका ऐसा साहस हुआ।"

कुछ सोचकर ब्रजकिशोर बोले—"यह एक लंबी कहानी है कमला! मैं समझता हूँ, इन बातों से अब कुछ लाभ न होगा। मगर इतना बतला देना चाहता हूँ कि जिस दिन से मैंने तुम्हें देखा है, उस दिन से मेरा हृदय अनावश्यक ढंग से तुम्हारी ओर खिंचता गया है, यद्यपि कभी उसमें वासना की भावना उत्पन्न नहीं हुई। मैंने सोचा था, कभी यह होगी भी नहीं, किंतु एक साधारण-सी घटना ने मुझे कहीं-का-कहीं ला पटका। उसके बाद अब तुम्हारे पति से भेंट हुई, तो मैंने अनुभव किया कि उस दिन कितना ग़लत काम हो गया मुझसे तुम्हें ग़लत समझकर। ओफ़!"

कमला एकटक नज़र से ब्रजकिशोर को देख रही थी। ब्रजकिशोर बोले—"प्रायः मेरी प्रवृत्ति के व्यक्ति कभी ऐसी ग़लती नहीं करते। विश्वास करो कमला, भ्रष्ट तथा कुपथ-

गामिनी स्त्री ही की ओर पुरुष अधिक आकृष्ट होता है। हम यह जानकर कि अमुक स्त्री दुश्चरित्र है, उसकी ओर आकर्षित होते हैं, और इस कार्य को सुलभ समझकर आगे पैर बढ़ा देते हैं। पवित्र स्त्री की ओर तो हमारी आँख नहीं उठती, हमारा साहस असफल हो जाता है, और इससे स्वयं हमारे चरित्र की रक्षा हो जाती है। यही दशा मेरी हुई। तुम सत्य जानना कमला, जीवन में मैंने कभी किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। तुम्हारी ओर भी आकृष्ट हुआ पवित्र भावनाओं के साथ, और यह सोचने लगा कि जीवन-भर भी यदि तुम्हारे साथ रहने को मिले, तो इसी प्रकार रहूँगा, किंतु यह जानकर कि तुम्हारा चरित्र इतना ऊँचा नहीं है, जितना मैं समझता था, मैं अपने पथ से भ्रष्ट हो गया। मेरे प्रकार का वासनाओं से मुक्त व्यक्ति यदि गिरता है, तो फिर सँभल नहीं सकता। असफलता उसके लिये प्राणघातक सिद्ध होती है।"

कमला बोल उठी—"मैं यह न जान सकी कि मेरे किस चरित्र ने मुझे आपकी दृष्टि में इतना गिरा दिया?"

ब्रजकिशोर धीरे से बोले—"कहना तो न चाहता था, किंतु उसे अब छिपा भी न सकूँगा। उस दिन जब मैं तुम्हारे साथ जगत बाबू के यहाँ गया था। तुम्हें याद होगा न?"

कमला कुछ याद करके सिहर उठी, बोली—"हाँ-हाँ।"

ब्रजकिशोर बोले—"उस दिन अनधिकार ढंग से मैंने तुम्हें जगत बाबू के साथ....."

"ओफ़ !"— कमला के मुँह से निकला—"अब बस कीजिए। मैं समझ गई।"

थोड़ी देर चुप रहकर ब्रजकिशोर बोले—"उस दिन से ही मेरी मनोवृत्तियाँ कलुषित हो गईं। मैं किसी प्रकार से भी तुम्हें प्राप्त करने के लिये पागल हो उठा। तुमने जो मेरा तिरस्कार किया, उस दिन उससे मेरे भाव तुम्हारे प्रति ऊँचे न उठकर और अधिक गिर गए। किंतु जब सहसा स्वयं जगत बाबू के मुँह से यह सुना कि तुम उनकी परिणीता हो, तो मेरी आँखें खुल गईं, मैं पागल हो उठा। ओफ़ ! कितनी बड़ी ग़लती हो गई। तुम चली गईं, तो मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि मेरा जीवन व्यर्थ है। उसी के फल-स्वरूप शीघ्रता से मृत्यु की ओर दौड़ा चला जा रहा हूँ।"

ब्रजकिशोर चुप हो गए। कमला धीरे से बोली—"तो अब उपाय ?"

खड़े होते हुए ब्रजकिशोर ने कहा—"अब मैं जा रहा हूँ। आज तुमसे सब कुछ कहकर बहुत हलका हो गया हूँ। अब कदाचित् ही तुमसे भेंट हो कमला !"

कमला बोली—"अब कहाँ जाएँगे आप ?"

सूखी हँसी हँसकर ब्रजकिशोर बोले—"जब तक रह सकूँगा, यहीं रहूँगा, कमला ! चेष्टा करूँगा कि तुम्हारी दृष्टि

अब मुझ पर न पड़े। घृणा का पात्र होकर रहने की अपेक्षा मृत्यु को आलिंगन कर लेना अधिक श्रेयस्कर है।"

"और गिरिजा?"—कमला के मुँह से निकला।

"उसका और मेरा संबंध समाप्त-सा है। वह तो मेरी रुग्णावस्था ही में मुझे छोड़कर अपने पिता के घर चली गई थी। उसका स्वभाव तो तुम भली भाँति जानती हो।"

कमला क्षण-भर चुप रही। व्रजकिशोर जाने लगे। अपने को बहुत कुछ रोकने पर भी कमला के मुँह से निकल गया—"ठहरिए।"

व्रजकिशोर घूमकर खड़े हो गए। कमला उनके कुछ निकट जाकर बोली—"क्या यह सत्य है कि आपने मुझे सदा वासना-रहित दृष्टि से देखा है?"

गंभीर होकर व्रजकिशोर बोले—"तुम जानती हो कमला कि झूठ बोलने का मेरा स्वभाव नहीं है।"

कुछ रुककर कमला बोली—"क्या अब भी मेरे प्रति आप वैसे ही भाव रख सकेंगे?"

व्रजकिशोर ने कहा—"मैं तुम्हारी बात समझा नहीं कमला!"

कमला ने अपनी बात को स्पष्ट करने की चेष्टा करते हुए कहा—"आपने सदैव अपने साथ मुझे रक्खा, और कभी अपने भावों को कलुषित नहीं होने दिया। आपका भविष्य में भी यही भाव रखने का इरादा था। बीच की उस घटना

को आप भूलकर आप क्या भविष्य में भी मेरे प्रति वैसे ही भाव रख सकेंगे ?"

बहुत कुछ सोचकर ब्रजकिशोर बोले—"यदि मैं कहूँ नहीं, तो ?"

तनकर खड़े होते हुए कमला ने कहा—"तो फिर मेरा आपको अंतिम प्रणाम। आप जा सकते हैं।"

ब्रजकिशोर ने आश्चर्य के साथ कमला की ओर देखा। कमला बोली—"मैं अपने जीवन के भूमिका-काल ही से एक विचित्र भूलभुलैया में पड़ गई हूँ ब्रजकिशोर बाबू ! जिस व्यक्ति से मैंने प्रेम किया, जिसे मैं जीवन-भर प्रेम करती रहूँगी, उसे मैंने ठुकरा दिया है बिना अपराध। जानते हो, क्यों ? क्योंकि समाज की दृष्टि में मैं और वह एक न हो सके। मेरा उस व्यक्ति के साथ जीवन-भर के लिये संबंध जोड़ दिया गया, जिसको मैं इच्छा करते हुए भी चाह नहीं सकती। घटना-क्रम ने हम दोनों को अलग भी कर दिया है। उन्हें जीवन-संगिनी मिल गई, किंतु मेरा जीवन बरबाद हो गया। मैं इस समय अरक्षणीया हूँ, मेरा संसार में कोई नहीं है।"

कहते-कहते कमला के आँसू आ गए। उसने फिर कहा—"मैं इस समय पिता के साथ हूँ। वह मेरे ही कारण सारे परिवार से अलग होकर यहाँ रह रहे हैं। मैं उनके जीवन के शेषांश के लिये अभिशाप हो गई हूँ। आप बता सकते

हैं, मुझे इस समय किस बात की आवश्यकता है ? बतलाइए।"

ब्रजकिशोर कुछ कह न सके; केवल कमला का मुँह देखते रह गए। कमला बोली—"मुझे आवश्यकता है एक रक्षक की। मुझे आवश्यकता है ऐसे व्यक्ति की, एक सगे और सच्चे मित्र की, जो मेरे साथ रह सके या मुझे अपने साथ रख सके। इसी से मैंने आपसे पूछा कि क्या आप मेरे प्रति वैसे ही विचार रख सकेंगे।"

ब्रजकिशोर सोच में पड़ गए। कमला ने कहा—"यदि आप अभी निर्णय न कर सकें, तो आप समय ले सकते हैं—दो दिन, चार दिन, दस दिन।"

ब्रजकिशोर धीरे से बोले—"और यदि मैं कहूँ हाँ, तो ?"

कमला कुछ अस्थिर-सी होकर बोली—"तो फिर......तो फिर......"

और वह रुक गई। ब्रजकिशोर उसके मुँह की ओर देखते हुए बोले—"तो फिर क्या ?"

"तो फिर संभव है, मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। आपको मृत्यु के मुख से बचाने की चेष्टा करूँ।"

ब्रजकिशोर क्षण-भर तक चुप रहे, फिर बोले—"तुम मेरा विश्वास कर सकती हो कमला।"

"तब फिर ठीक है। आप जिस होटल में ठहरे हैं, वहीं मैं आपको परसों शाम के ७ बजे मिलूँगी। अंतिम निश्चय वहीं

होगा अब आप जायँ पिताजी के आने का समय हो गया है।" कमला ने कहा।

ब्रजकिशोर चलने लगे। दरवाजे के पास पहुँचकर वह रुक गए, और घूमकर कमला से बोले—"क्या समाज से तुम बहुत डरती हो कमला! मैं समझता हूँ। कदाचित् सामाजिक बंधनों को तोड़कर तुम अधिक सुखी हो सकती थी।"

कमला ने धीरे से कहा—"यह मेरी निज की बात है। मैं सामाजिक बन्धनों को तोड़ सकती हूँ। नैतिक बंधनों को तोड़ना मेरे लिये असंभव है।"

ब्रजकिशोर चले गए।

तीसरा खंड

(१)

प्रयाग के जान्स्टनगंज मुहल्ले में एक साफ़-सुथरे मकान में तीन-चार सुशिक्षित-से व्यक्ति बैठे हुए साहित्यिक चर्चा में निमग्न हैं।

कविवर कुसुमाकर बोले—"प्रसादजी ने ही रहस्यवाद की कविता का श्रीगणेश किया। पंतजी की भावनाएँ कोमल हैं, भाषा मधुर है, तथा कल्पना प्रशंसनीय है; फिर भी प्रसादजी में जो प्रौढ़ता है, वह किसी में नहीं।"

प्रवीणजी कवि होने के साथ-ही-साथ अच्छे आलोचक भी थे। बोले—"प्रसाद और पंत की तुलना अधिक रुचिकर नहीं है। प्रसादजी और चीज़ हैं और पंतजी उनसे भिन्न। दोनो ही महान् कलाकार हैं। दोनो ही की धारा और प्रवाह मौलिक हैं। यदि हम उनकी तुलना न करें, तो अधिक अच्छा है। दोनो ही युगांतरकारी कवि हैं। क्यों विमलजी ?"

सिर हिलाते हुए विमलजी ने कहा—"सबकी ही अलग धारा है, अलग रस है। प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी वर्मा इस युग की विभूतियाँ हैं।"

'निराला'जी का नाम सुनते ही कमलेश ने आँखें चढ़ाकर

कहा—"क्षमा कीजिएगा। मैं निरालाजी को कवि नहीं मानता।"

त्रिभुवननाथ ने कहा—"आपके मानने से या न मानने से क्या होता है? निरालाजी-जैसे महान् साहित्यिक के प्रति ऐसी बात कह देना बड़ा आपत्ति-जनक है। मैं कहता हूँ, निराला युग-कवि हैं। यदि आपमें उनकी कविता समझने की क्षमता न हो, तो इसमें किसी का क्या दोष?"

कमलेशजी ताव खाकर बोले—"आपका दावा है कि निरालाजी की कविता आप समझ लेते हैं?"

त्रिभुवननाथ ने कहा—"यदि मैं यह कहूँ कि मैं उन्हें समझ तो सकता हूँ, किंतु आप-जैसे व्यक्तियों को समझा नहीं सकता, तब?"

कमलेश ने सिर हिलाकर कहा—"यह तो issue को side track करना है। मैं कहता हूँ, स्वयं निरालाजी उस कविता को नहीं समझ पाते, जिसे वह लिखते हैं! फिर आप किस खेत की मूली हैं?"

त्रिभुवननाथ हँसकर बोले—"अब तुम ठीक रास्ते पर आए। इससे यह तो स्पष्ट हो ही गया कि आप निराला की कविता नहीं समझते।"

कमलेश बोले—"हाँ-हाँ, न मैं समझता हूँ और न कोई और ही समझता है।"

बात काटकर त्रिभुवननाथ ने कहा—"आप और सबके भी

ठेकेदार हैं, यही न ? वाह री आपकी तर्क-शक्ति ! मैं कहता हूँ कि निरालाजी उस युग से भी आगे की कविता लिख रहे हैं, जिस युग में वह रहते हैं। आनेवाला युग उनको समझेगा। मैं कहता हूँ कि उनको और उनकी कविता को समझने में अभी एक युग लग सकता है। निरालाजी को रहस्यवादी कवि कहना मैं उनका अपमान समझता हूँ। वह तो हृदयवाद लिखते हैं।"

कुसुमाकरजी बोल उठे—"यह तो मैं भी मानता हूँ कि उनमें एक निरालापन तो है। संभव है, त्रिभुवननाथजी जो कुछ कह रहे हैं, वही सत्य हो। इसके अतिरिक्त निरालाजी महान् पंडित और सर्व-श्रेष्ठ आलोचक हैं, इससे तो आप भी इनकार न कर सकेंगे कमलेशजी ?"

सिर हिलाते हुए कमलेश ने कहा—"हाँ, यह तो ठीक है। निरालाजी को पंडित और आलोचक तो मैं भी मानता हूँ। उनका अध्ययन भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है।"

हँसते हुए त्रिभुवननाथ ने कहा—"धीरे-धीरे आप सभी कुछ मानने लगेंगे। और आज (पास में बैठे हुए व्यक्ति की ओर संकेत करके) जगदीशजी कैसे चुप हैं ?"

जगदीशजी चुपचाप बैठे हुए इस वाद-विवाद का आनंद ले रहे थे। हँसकर बोले—"भाई, तुम लोग ठहरे गहरे साहित्यिक। तुम लोगों ने जो विषय छेड़ दिया है, उसे सुनने से अपना कुछ लाभ ही होगा।"

कमलेशजी ने कहा—"जगदीशजी को तो अपनी पत्रिका 'किरण' के लिये कुछ मसाला चाहिए। जो कुछ लिखते हैं, उसका मूर्त आधार तो हमीं लोग हैं न ?"

कुसुमाकरजी बोले—"और यह तो बतलाइए जगदीशजी, आपकी पत्रिका में जो गत मास कहानी 'सपना' प्रकाशित हुई, उसकी लेखिका श्रीमती मंजुलिका कौन हैं ?"

त्रिभुवननाथ बोल उठे—"अरे भाई, वह हमारी भाभी-जी ही हैं, श्रीमती जगदीश।"

कुसुमाकरजी ने कहा—"तब तो आपको बधाई है जगदीश-जी! बड़ी सुंदर कहानी है भाईजी। इधर प्रेमचंद तथा कौशिकजी के न रहने से हिंदी-संसार में कहानी-लेखकों का कुछ अभाव-सा मालूम पड़ रहा है।"

कमलेश ने कहा—"आप ठीक कह रहे हैं। इधर जो नई शैली की कहानियाँ कुछ नवीन कहानीकारों ने लिखना शुरू की थीं, वे पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल हुईं। प्रेमचंद तथा कौशिक की शैली ही महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक सिद्ध हुई। सिनेमा-स्टारों के गानों को शीर्षक बना-कर जिस कहानी-साहित्य का निर्माण इन नवीन कहानीकारों ने प्रारंभ किया था, उसकी तो प्रौढ़ता को पहुँचने के पहले ही मृत्यु हो गई। यही दशा उपन्यास-साहित्य की है।"

जगदीशजी बोले—"कहानी में उस युग की छाप होना अनिवार्य है, जिस युग में वह लिखी गई हो। आजकल के

कहानीकार कहानी में युग की छाप न देने ही के कारण असफल हो रहे हैं। ऐसा साहित्य स्थायित्व को नहीं प्राप्त हो सकता।"

कमलेशजी बोले—"कुछ भी हो, किंतु मंजुलिकाजी की वह कहानी बहुत सुंदर है। मैं उन्हें बधाई देता हूँ।"

उठते हुए जगदीशजी बोले—"इन बधाइयों से तो पेट भरेगा नहीं। चलें, कुछ पेट की चिंता में लगें। हमारे मालिक (प्रकाशक) लोग अच्छी चीज चाहते हैं, किंतु पैसा अच्छा देना नहीं जानते।"

"आपको तो कदाचित् १००) मासिक दे रहे हैं जगदीश-जी ?" कुसुमाकर ने पूछा।

"हाँ, अब पिछले महीने से १२५) दे रहे हैं। मैं तो 'किरण' से अपना संबंध-विच्छेद करने की सोच रहा हूँ।"

कमलेशजी बोले—"और हाँ, आज कुसुमाकरजी ने अपनी कोई रचना नहीं सुनाई। एक कविता आपकी हम सुनकर ही जायँगे। बैठिए जगदीशजी।"

कुसुमाकरजी ने कहा—"यह बात गलत है। आज जब तक जगदीशजी अपनी एक रचना न सुनाएँगे, मैं सुनाने से रहा।"

जगदीश हँसकर बोले—"मैं तो शुष्क आदमी हूँ। किंतु यदि कुसुमाकरजी की यही जिद है, तो सुनाए देता हूँ। सुनिए—

"दिन जीवन के हैं बीत रहे।
क्षण-क्षण के इस परिवर्तन में वैराग्य रहे या प्रीति रहे—
दिन जीवन के हैं बीत रहे
हम चले किधर थे, चले किधर, अब चलें किधर, क्यों चले किधर?
जीवन की यही समस्या है, विश्राम नहीं हमको पल-भर।
उनके भावों पर चलकर भी उनके मन के विपरीत रहे;
यों जीवन के दिन बीत रहे
मैं सागर-सा, वे सिकता-कण, मैं अंतराग्नि, वे बड़वानल;
मैं अपनेपन से दूर, किंतु वे गए मार्ग से दूर निकल।
इन संघर्षों में क्या जानें, हम हार रहे या जीत रहे;
पर जीवन के दिन बीत रहे।"

"वाह, क्या सुंदर रचना है!" कहकर सभी प्रशंसा करने लगे। कमलेशजी ने कहा—"हाँ, अब कुसुमाकरजी कहेंगे।"

कुसुमाकरजी ने कहा—

"मैं निर्विरोध बहता रहता।
अपनी मौलिकता में रहकर मैं साथ सदा उनके रहता।
मैं निर्विरोध बहता रहता।
संतुलित भावनाएँ मेरी—सीमित मेरा क्रीड़ा-थल है;
मेरा विषाद मुझमें रहता, मेरा जीवन मेरा बल है।
मैं अपने जीवन-गानों में उन्माद सदा भरता रहता;
मैं निर्विरोध बहता रहता।
कितने इतिहास छिपे उर में? कितने बीहड़ पथ झेल चुका;
कितनी ही करुण कथाओं से मेरा जीवन अब खेल चुका।
इस गति प्रवाह पर जग रोता, मैं किंतु सदा हँसता रहता;
मैं निर्विरोध बहता रहता।

मैं मुड़ न सका अपनी गति से, रोका आकर चट्टानों ने;
मैं रुक न सका, रोका मुझको आह्लाद-भरे आह्वानों ने।
मेरे जीवन का ध्रुव-तारा पथ-हीन, किन्तु चलता रहता;
मैं निर्विरोध बहता रहता।"

"वाह, वाह! चित्र खींचकर रख दिया कुसुमाकरजी ने।" खड़े होते हुए जगदीश ने कहा।

उसके पास आकर धीरे से त्रिभुवन बोला—"कल सवेरे घर पर मिलिएगा जगदीशजी? आपसे एक काम है।"

जगदीश बोले—"बोलो, क्या काम है? अभी बता सको, तो बता दो।"

कुछ परेशानी के साथ त्रिभुवन बोला—"नहीं, घर पर ही मिलूँगा।"

सड़क पर निकलकर जगदीश ने कहा—"अच्छा, फिर सवेरे आ जाना। कोई घर आपको अभी तक मिला था नहीं?"

त्रिभुवन बोला—"कहाँ मिला। तलाश में हूँ।"

(२)

कमला को बहुत रात बीत जाने पर भी लौटा न देख रामेश्वरनाथ घबरा उठे। लगभग १२ बज चुका था। परदेश में कहाँ जायँ, और किससे पूछें? कोई अपना परिचित भी नहीं।

उन्होंने दुर्गा से पूछा—"आते वक़्त कुछ कह गई थीं तुमसे?"

हाथ जोड़कर दुर्गा बोला—"सरकार, मैं तो उस समय घर पर भी नहीं था। दो घंटे बाद जब लौटा, तब बीबीजी घर में नहीं थीं।"

सारी रात रामेश्वरनाथ ने परेशानी में काटी। सबेरे वह आज न तो घूमने ही निकले, और न गंगा-स्नान ही को गए। वह घर ही में नहाकर पूजा करने बैठे ही थे कि दुर्गा ने एक पत्र उनके हाथ में धर दिया लाकर।

उसे देखकर रामेश्वरनाथ बोले—"कहाँ से लाया है इसे?"

"बीबीजी के तकिए के नीचे मिला है।" दुर्गा बोला।

पत्र में लिखा था—

"पिताजी,

मैं जा रही हूँ। अब इस जीवन में कभी लौटकर न आ सकूँगी। आपको घर से विलग करके मैंने जो अपना भार आप पर रख दिया था, उसे हटाने के लिये मैं तड़पड़ा रही थी। आज एक मार्ग मिल गया। उसी पर ईश्वर के भरोसे जा रही हूँ। आप घर लौट जायँ, और मुझे भूल जाने की चेष्टा करें।

"एक बात और है पिताजी। वे जो चार हजार रुपए मेरे पास रक्खे थे, उन्हें अपने साथ लिए जा रही हूँ। कदाचित् इससे आपको संतोष ही होगा। मैं अरक्षिता हूँ, ईश्वर मेरी रक्षा करेगा।

अभागिनी

कमला"

रामेश्वरनाथ पत्र पढ़कर स्तब्ध रह गए। उनके आँसू आ गए। पूजा करने में उनका मन न लगा। चुपचाप उठकर आराम-कुरसी पर लेट गए। दुर्गा ने आकर कहा—"चाय-नाश्ता लाऊँ ?"

रामेश्वरनाथ कुछ बोले नहीं। दुर्गा चुपचाप खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद वह बोले—"कल उनसे कोई मिलने यहाँ आया था दुर्गा ?"

दुर्गा कुछ देर चुप रहकर बोला—"कल तो कोई नहीं आया था बाबूजी !"

रामेश्वरनाथ बोले "तो क्या फिर किसी और दिन उससे कोई मिलने आया था ?"

दुर्गा डर के मारे चुपचाप खड़ा रहा। ज़ोर से रामेश्वरनाथ बोले—"बोलता क्यों नहीं ? कौन आया था ?"

दुर्गा सभीत बोला—"३-४ दिन हुए, एक बाबूजी बिटिया से मिलने आए थे। क़रीब आध घंटा ठहरे थे।"

रामेश्वरनाथ का माथा ठनका। बोले—"और भी वह कभी यहाँ आए थे ?"

दुर्गा बोला—"और कभी तो नहीं आए थे। हाँ, पहले एक दिन रास्ते में बिटिया से मिले थे।"

रामेश्वरनाथ सोचने लगे—"यह कौन व्यक्ति हो सकता है ? हरिश्चंद्र तो नहीं ?"

उन्हें एकाएक बड़ा क्रोध आया। उनके मुँह से निकला—"इस लड़की ने सदा सबको कष्ट दिया। आजकल की लड़कियों की लीला भी कुछ समझ में नहीं आती।"

दुर्गा चला गया। रामेश्वरनाथ उसी प्रकार लेटे रहे। थोड़ी देर में दुर्गा ने मेज़ पर चाय-नाश्ता लाकर रख दिया। पंडितजी धीरे से बैठकर चाय पीने लगे।"

उन्होंने सोचा—"अब क्या मुँह लेकर घर लौटूँ ? रमानंद वाक्य-बाण से ही ढेर कर देगा। अगर इस लड़की को ऐसा ही करना था, तो हमारे यहाँ लौटकर ही क्यों आई ? पूछो, उसे वहाँ क्या कष्ट था ? मूर्ख कहीं की।"

उन्होंने दुर्गा को बुलाकर कहा—"अब यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है दुर्गा। कल ही सब सामान तैयार करो, हम काशी लौट चलेंगे।"

दुर्गा मालिक के मुँह की ओर देख रहा था। रामेश्वरनाथ ने कहा—"जितना ही मेरा यहाँ मन लग गया था, उतना ही अब उचाट हो रहा है।"

दुर्गा बोला—"बहुत अच्छा सरकार!"

दुर्गा चला गया। रामेश्वरनाथ बहुत देर तक बैठे कुछ सोचते रहे, फिर उठकर मेज के निकट जा बैठे, और रामानंद को पत्र लिखने लगे।

उधर दुर्गा सड़क पर निकल गया, कुछ आवश्यक सामान खरीदने।

जब वह लौटा, तो उसके हाथ में एक लिफाफा देते हुए रामेश्वरनाथ ने कहा—"अभी जाने की तैयारी न होगी। मैं रामानंद को पत्र भेज रहा हूँ। इसका उत्तर पाने पर तैयारी करेंगे। जा, इसे डाकखाने में छोड़ आ।"

दुर्गा ने फिर एक बार मालिक के मुँह की ओर देखा, और लिफाफा ले लिया।

(३)

दूसरे दिन सवेरे ही त्रिभुवननाथ जगदीश के घर पहुँचा।

बैठक में उससे भेंट करते हुए जगदीश ने कहा—"अब कहिए त्रिभुवननाथजी, क्या कहना है ?"

कुछ इधर-उधर देखकर त्रिभुवननाथ बोला—"मैं इस समय विपत्ति में हूँ, क्या आप मेरी कुछ सहायता करेंगे ?"

सहानुभूति-सूचक भाव प्रदर्शित करते हुए जगदीश बोले—"हाँ-हाँ, कहिए।"

अपनी कुरसी और उनके निकट खिसकाते हुए त्रिभुवननाथ धीरे से बोला—"आप जानते ही हैं कि मैं इस नगर में अभी बहुत थोड़े दिनों से आया हूँ।"

जगदीश ने स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

त्रिभुवन बोला—"इस समय मैं बेकार हूँ। बड़ी दौड़-धूप के बाद भी कोई नौकरी नहीं मिल सकी। पास में जो कुछ था, वह भी खर्च हो गया। अब बड़ी मुश्किल में हूँ।"

अपनी सदरी की जेब से एक दस रुपए का नोट निकाल-कर त्रिभुवन की ओर बढ़ाते हुए जगदीश ने कहा—"लीजिए, इससे अपना काम चलाइए।"

त्रिभुवन ने संकोच के साथ नोट लेते हुए कहा—"मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ; क्या मुझे आपकी पत्रिका के कार्यालय में कोई स्थान मिल सकता है ?"

कुछ देर सोचने के बाद जगदीश ने कहा—"क्षमा कीजिएगा, यदि मैं आपसे आपकी योग्यता के विषय में कुछ जानना चाहूँ।"

त्रिभुवन बोला—"मेरी योग्यता साधारण-सी है। बाल्यकाल ही से मुझे हिंदी-साहित्य से प्रेम रहा है। कुछ कविताएँ भी लिख डालता हूँ यों ही साधारण-सी। कलकत्ते के एक दैनिक पत्र में भी कुछ समय तक संपादकीय विभाग में काम कर चुका हूँ।"

जगदीश बोले—"आपका कितने वेतन में निर्वाह हो सकेगा ?"

कुछ संकोच के साथ त्रिभुवन ने कहा—"मैं विपत्ति में हूँ। इस समय जो कुछ भी मिल जायगा, उसे अपना अहोभाग्य समझूँगा।"

सोच-समझकर जगदीश ने कहा—"अच्छा, मैं कल आपको बतलाऊँगा। 'किरण' के अध्यक्ष महोदय से जरा कल बात कर लूँ।"

खड़े होते हुए त्रिभुवन बोला—"अच्छी बात है। कल......"

उसे बिठलाते हुए जगदीश ने कहा—"बैठिए त्रिभुवननाथ-जी, चाय पीकर जाइएगा।"

त्रिभुवन बैठ गया जगदीश ने आवाज़ दी चाय भेज देना रामसेवक।"

थोड़ी देर तक दोनों साहित्य-संबंधी बातें करते रहे। त्रिभुवन ने ताड़ा कि पर्दे के पीछे से यदा-कदा दो चमकती आँखें देख रही हैं। उसने अनुमान लगाया कि वह अवश्य मंजुलिकादेवी होंगी।

रामसेवक चाय और नाश्ता लेकर आ गया। जिस समय दोनों चाय पी रहे थे, उस समय भी वे आँखें त्रिभुवन को देख रही थीं।

चाय पीते-पीते त्रिभुवन बोला—"मंजुलिकाजी बड़ी सुंदर कहानी लिखती हैं। मैं उसकी आलोचना लिखूँगा। आप उसे 'किरण' में अवश्य छापें।"

कुछ मुस्किराकर जगदीश ने कहा—"ऐसी कोई असाधारण कहानी भी नहीं है। प्लाट अच्छा बन गया है।"

त्रिभुवन मंजुलिका की प्रशंसा से जगदीश और मंजुलिका दोनों को प्रसन्न करना चाहता था।

चाय के बाद त्रिभुवन उठ खड़ा हुआ। बोला—"अच्छा, आज्ञा दीजिए संपादकजी।"

जगदीश खड़े होकर बोले—"अच्छा भाई, जब समय हुआ करे, तो आ जाया करो। कहाँ ठहरे हो?"

त्रिभुवन बोला—"धर्मशाले में हूँ। अभी तक कोई मकान ही नहीं मिला।"

जगदीश ने कहा—"देखो, मैं इस विषय में चेष्टा करूँगा।"

त्रिभुवन चला गया।

जब घर के अंदर जगदीश गए, तो मंजुलिका पलँग पर लेटी हुई थी। बोली—"कौन आया था?"

जगदीश बोले—"एक साहित्यिक हैं। तुम्हारी कहानी की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे।"

मंजुलिका बोली—"इससे तो आप ही को खुश होना चाहिए। वास्तव में तो उसका सुंदर रूप आप ही की देन है।"

जगदीश बोले—"फिर भी तुमने जो कुछ भी लिखा था, उससे तुम्हारी साहित्यिक प्रगति उज्ज्वल मालूम होती है। और, (ज़रा मुस्किराकर) तुम शीघ्र ही एक प्रसिद्ध कहानी-लेखिका हो जाओगी।"

मंजुलिका हँसी नहीं। जगदीश बोले—"अब कार्यालय जा रहा हूँ। भोजन में कितनी देर है?"

मंजुलिका बोली—"अभी देर है। १२ बजे आकर खा लीजिएगा।"

जगदीश चुप रहे। मंजुलिका बोली—"यह सज्जन क्यों आए थे?"

जगदीश बोले—"अभी आज ही में यहाँ आए हैं। कुछ काम की खोज में हैं। 'किरण' के संपादकीय विभाग में जगह चाहते हैं।"

मंजुलिका बोली—"बिना जाने-पहचाने व्यक्ति को रख लेना ठीक नहीं है। यदि आपके यहाँ जगह खाली हो, तो किसी उपयुक्त व्यक्ति को ढूँढ़कर रखिए।"

कुछ सोच कर जगदीश बोले—"बिना जाने-पहचाने व्यक्ति को रख लेना कुछ बुरा भी नहीं है। जब मैं यहाँ आया था, तो मुझे भी तो न कोई जानता था।"

मंजुलिका बोली—"किंतु बातचीत से यह व्यक्ति मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता।"

आश्चर्य से जगदीश बोले—"किंतु तुमने यह कैसे जाना?"

मंजुलिका सँभलकर बोली—"मैं सब कुछ सुन रही थी। जिस समय........."

बात काटकर जगदीश बोले—"तो तुम वहीं चली क्यों न आईं?"

मंजुलिका बोली—"मैं जिस-तिससे मिलने की आदी नहीं हूँ। आप मेरा स्वभाव भली भाँति जानते हैं।"

जगदीश थोड़ी देर चुप रहकर बोले—"जब साहित्यिक क्षेत्र में ही आना हमने तय किया है, तो लोगों से दूर-दूर रहने की बात भी नहीं चल सकती।"

मंजुलिका मुँह बनाकर बोली—"किंतु हमको यह भी तो तय करना है कि हम किससे मिलें और किससे न मिलें। जिस व्यक्ति से अपना लाभ होता हो, उससे मैं आवश्यकता से अधिक मिल सकती हूँ।"

जगदीश हँसकर बोले—"आवश्यकता से अधिक मिलने के लिये तो केवल मुझे ही रहने दो मंजु।"

मंजुलिका व्यंग्य समझी। बोली—"मैं आवश्यकता से अधिक कैसे मिलती हूँ, इसे आप भली भाँति जानते हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि मैं इस व्यक्ति को बातचीत और चेहरे-मोहरे से कुछ अधिक अच्छा न समझ सकी।"

जगदीश को यह बात अधिक जँची नहीं, बोले—"दुखी और बेरोजगार व्यक्ति को देखकर उसके विषय में किसी प्रकार का अनुमान प्रायः ग़लत भी हो जाया करता है।"

कुछ खीझकर मंजुलिका बोली—"तो आप उससे जरूर नाता जोड़िए। मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया।"

जगदीश मंजुलिका के स्वभाव से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा।

वह जूते पहनकर जाने लगे। मंजुलिका चुपचाप लेटी-लेटी कुछ सोचने लगी।

जब जगदीश जाने को उद्यत हुए, तो वह बोली—"इससे मेरा अभिप्राय उसको गाली देकर निकाल देने का नहीं है। यदि वास्तव में वह योग्य हो, तो उसे दफ्तर में रख लेने में कोई आपत्ति नहीं है।"

जगदीश चले गए। मंजुलिका कुछ सोचने लगी। और, अंत में मुस्किराकर बोली—"बेचारा ....!"

और वह फिर उसी विचार-धारा में निमग्न हो गई,

× × ×

शाम को जगदीश ने आकर मंजुलिका को बतलाया कि त्रिभुवननाथ को 'किरण-कार्यालय' में ८०) मासिक की नौकरी मिल गई।

मंजुलिका ने सुनकर मुँह बना लिया। जगदीश बोले—"बेचारा कष्ट में था। वहीं दफ्तर में उसके रहने की भी व्यवस्था कर दी गई है।"

मंजुलिका बोली—"ठीक ही है।"

जगदीश ने देखा कि मंजुलिका ने इसे अधिक पसंद नहीं किया।

उसे चुप देखकर जगदीश बोले—"आज अपने साहित्यिक मित्र एक पार्टी की माँग कर रहे थे। इधर ३-४ महीनों से उन्हें खिलाने-पिलाने का वादा करता आया हूँ।"

मंजुलिका ने गंभीर भाव से कहा—"तो फिर खिलाइए न, आपको कौन मना करता है?"

जगदीश बोले—"किंतु बिना तुम्हारे सहयोग के.....”

बीच ही में मंजुलिका बोल उठी—"जहाँ आपका सहयोग है, मैं उससे दूर कहाँ।"

"तो फिर कल सबको आमंत्रित करूँ?"

"जैसी आपकी इच्छा। यदि खिलाना ही है, तो जैसे और दिन, वैसे ही कल।" मंजुलिका बोली।

"तो फिर तैयार रहना।"

"कौन-कौन होगा?" मंजुलिका ने पूछा।

"चार-पाँच व्यक्ति होंगे—कुसुमाकरजी, कमलेशजी, विमलजी, प्रवीणजी तथा ......"

बात काटकर मंजुलिका बोली—"तथा तुम्हारा नया मित्र त्रिभुवननाथ। यही न?"

"जैसा तुम समझो।"

(४)

मंजुलिका ने अपने घर पर आयोजित पार्टी का सुंदर रूप से प्रबंध कर दिया।

संध्या के ५ बजे साहित्यिकों की छोटी-सी भीड़ उसकी बैठक में एकत्र हो गई। थोड़ी देर तक मंडली ने कुसुमाकर तथा विमलेशजी की कविताओं का रसास्वादन किया, अंत में खाने बैठे।

कुसुमाकर ने खाते-खाते कहा—"हमारी मंजुलिकाजी कुशल कहानीकार ही नहीं, वरन् पाक-विद्या में भी आचार्य हैं।"

विमलेश बोले—"हम लोग उन्हें कविता में बधाई देंगे!"

जगदीश हँस दिए। प्रवीणजी बोले—"आज की पार्टी के संबंध में 'किरण' का एक विशेषांक निकलना चाहिए।"

"क्यों नहीं। और नाम उसका हो 'पार्टी-अंक'। यही न ?"—कुसुमाकरजी ने कहा।

त्रिभुवननाथ बोला—"'पार्टी अंक' के नामकरण से लोगों को भ्रम भी हो सकता है। अच्छा हो, यदि उसका नाम 'चाय-अंक' रक्खा जाय।"

सभी लोग हँसकर खाने लगे। कुसुमाकर बोले—"भाई, लगे हाथ मंजुलिकाजी से हमारा परिचय भी हो जाना चाहिए।"

विमलेशजी चाय की चुसकी लगाते हुए बोले—"जरूर। आशा है, वह हमसे परदा न करेंगी।"

जगदीश को यद्यपि यह बात पसंद न आई, फिर भी वह बोले—"हाँ-हाँ, वह किसी से परदा नहीं करतीं।"

पार्टी समाप्त होने के पश्चात् जगदीश उठकर अंदर चले गए। मंजुलिका बोली—"बहुत कम खाया तुम्हारे मित्रों ने। अभी तो सारा सामान रक्खा हुआ है।"

जगदीश ने कहा—"अब ज़रा कविताएँ चलेंगी। क्या तुम भी आ रही हो बाहर?"

मुँह बनाकर मंजुलिका ने कहा—"मुझे वक्त नहीं है इन सब व्यर्थ की बातों के लिये।"

क्षण-भर चुप रहकर जगदीश बोले—"कदाचित् वे लोग तुमसे परिचय भी करना चाहते हैं।"

मंजुलिका की भवें तन गईं। बोली—"आख़िर क्यों?"

जगदीश ने कह दिया—"यों ही। कदाचित् तुम्हारी कहानी के लिये तुम्हें बधाई देना चाहते हैं।"

भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर मंजुलिका मुँह बनाकर बोली—"ख़ूब समझती हूँ मैं पुरुषों को। सभ्यता के अवतार बनकर ही तो पुरुष स्त्री की कमजोरी का लाभ उठाना चाहता है। ऐसी बधाइयों को मैं ख़ूब समझती हूँ।"

जगदीश चुप हो रहे। मंजुलिका कुछ सोचकर बोली—

'आप परिचय की बात रहने दीजिए जिसे परिचय के योग्य समझूँगी, मैं उससे स्वयं परिचय कर लूँगी।"

जगदीश बाहर आकर मंडली के साथ बैठ गए। कुसुमाकरजी ने कहा—"अब आपकी एक रचना सुनेंगे जगदीशजी।"

जगदीश ने कहा—"पेट भर जाने पर मैं तो कुछ सुनाने के अयोग्य हो जाता हूँ। आप ही……"

इतने में अंदर से रामसेवक ने आकर कहा—"बहूजी कुसुमाकर साहब को अंदर बुला रही हैं।"

सभी लोग कुसुमाकरजी की ओर देखने लगे। विमलेशजी बोले—"जाइए कुसुमाकरजी, आप ही सबसे अधिक सौभाग्यशाली हैं।"

कुसुमाकरजी रामसेवक के साथ उठकर अंदर चले गए। मंजुलिका ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया, और बोली—"आइए, बैठिए।"

कुसुमाकरजी कुरसी पर बैठ गए। उन्होंने देखा, मंजुलिका वास्तव में मंजुलिका ही है। ढला हुआ-सा शरीर, गौर वर्ण और आकर्षक नेत्र। वह बोले—"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

मंजुलिका मुस्किराकर बोली—"उस दिन आपने जो रचना पढ़ी थी, वह मुझे बहुत पसंद आई।"

हिं-हिं-हिं करते हुए कुसुमाकर बोले—"यों ही साधारण-

सी कविता लिख लेता हूँ। आपको इतनी सुंदर कहानी लिखने पर तो मैं बधाई देना भूल ही गया!"

मंजुलिका मुस्किराकर नीचे देखने लगी। कुसुमाकरजी ने कहा—"बैठक में आइए। कदाचित् अब रचनाएँ सुनाई जायँगी।"

मंजुलिका बोली—"फिर किसी समय सुनूँगी, जब फिर मेरे यहाँ आएँगे। मुझे तो केवल आप ही की रचनाएँ पसंद आती हैं।"

कुसुमाकरजी गद्गद हो गए। बोले—"अच्छी बात है। विमलेशजी भी आपसे मिलने के लिये उत्सुक थे।"

थोड़ी देर बैठकर कुसुमाकरजी बैठक में चले गए। सभी लोग उनकी ओर इस प्रकार देख रहे थे, जैसे कोई प्राणी स्वर्ग से लौटकर आया हो।

थोड़ी देर में रामसेवक आकर विमलेश को अंदर बुला ले गया। जगदीश को मंजुलिका का यह ढंग कुछ विचित्र-सा लगा।

विमलेश, प्रवीण तथा कमलेश को बारी-बारी से अंदर बुलाकर मंजुलिका ने अपने दर्शन दे दिए। बच रहा त्रिभुवन-नाथ—उसे नहीं बुलाया मंजुलिका ने।

इससे त्रिभुवननाथ ने अपने को कुछ अपमानित अनुभव किया। जगदीश को भी मंजुलिका की यह बात अच्छी नहीं लगी। सांत्वना के ढंग पर उन्होंने कहा—"आपको दफ़्तर में कोई कष्ट तो नहीं है, त्रिभुवनजी!"

उदास भाव से त्रिभुवननाथ ने कहा—"जहाँ आप हैं, वहाँ मुझे क्या कष्ट है ?"

कुसुमाकरजी बोले—"यह अच्छा ही हुआ कि त्रिभुवननाथ जी 'किरण' के संपादकीय विभाग में हो गए।"

जगदीश बोले—"हाँ, त्रिभुवननाथजी योग्य व्यक्ति हैं। इनसे मुझे बड़ी सहायता मिलती है।"

जब सब लोग चले गए, तो जगदीश ने कहा—"त्रिभुवननाथ को तुम्हारे इस व्यवहार से बड़ा कष्ट हुआ। मेरी राय में यह ठीक नहीं हुआ।"

मंजुलिका बोली—"इसमें बुरा मानने की क्या बात है ? किसी समय मिल लूँगी उससे भी।"

जगदीश चुप रहे।

उधर त्रिभुवन जब दफ़्तर पहुँचा, तो चारपाई पर लेटकर सोचने लगा—"बड़ी अभिमानिनी मालूम पड़ती है। आखिर मेरा ही तिरस्कार क्यों किया गया। मैं जो उसके पति का नौकर ठहरा, इसलिये ? अब मैं स्वयं भी कभी न जाऊँगा, उस घर में। इस प्रकार का अपमान······"

नौकर ने आकर कहा—"भोजन न करेंगे बाबूजी, आज आप। खाना लाऊँ ?"

त्रिभुवन के लिये रोज नौकर होटल से खाना ला देता था। उसने कहा—"आज रहने दो रघुनाथ। मैं संपादकजी के यहाँ से खाना खा आया हूँ।"

(५)

दूसरे ही दिन जब रघुनाथ ने आकर त्रिभुवन से कहा कि "आज होटल से खाना नहीं लाना है बाबूजी। बहूजी ने घर से खाना भेज दिया है, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह यह न समझा कि वह मंजुलिका के प्रति बुरे भाव रक्खे या अच्छे।"

किंतु उस दिन से दोनों वक्त मंजुलिका उसके लिये भोजन भेजने लगी। त्रिभुवन आश्चर्य में पड़ गया। उसने एक दिन रघुनाथ से कहलवा दिया कि "आप कष्ट न करें। मैं होटल का खाना खाने का आदी हूँ।"

लौटकर रघुनाथ ने कहा—"बहूजी ने कहा है कि मुझे कोई कष्ट नहीं है। आप चिंता न करें।"

त्रिभुवन चुप हो गया। उसके हृदय में मंजुलिका के प्रति जो भाव उस दिन पार्टी में पैदा हो गए थे, वे दूर हो गए। साथ-ही-साथ उसके हृदय में मंजुलिका के दर्शन की लालसा और भी प्रबल हो उठी।

त्रिभुवननाथ में कई गुण विशेष रूप से उल्लेखनीय थे। वह मधुर-भाषी होने के साथ ही सुंदर हृदय का भी था। प्रत्येक व्यक्ति से जब मिलता, तो उसके सामने अपने हृदय

का सारा प्रेम उँडेलकर रख देता। किसी से दुर्व्यवहार करने का तो मानो उसका स्वभाव ही न था। काम करने में इतना फुर्तीला कि जिस दिन से वह दफ़्तर में आया था, जगदीशजी को कोई काम ही न करना पड़ता था। अध्यक्ष भी प्रसन्न थे, क्योंकि दफ़्तर का काम इतना अप टु-डेट हो गया था कि देख-कर उसकी कार्य-तत्परता की प्रशंसा करनी ही पड़ती थी।

देखने में वह आकर्षक और सुंदर था। जिस समय कविता पढ़ता, तो लोगों का चित्त अपनी ओर खींच लेता। वह जानता था कि यदि एक बार भी उसका मंजुलिका से साक्षात्कार हो जाय, तो वह अवश्य उसे अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। इधर उसका स्वास्थ्य कठिनाइयों और कष्टों के कारण यद्यपि गिर गया था, फिर भी वह बुरा न लगता था।

उस दिन जब वह घर लौटा, तो रात-भर अपने मस्तिष्क में मंजुलिका की कल्पना-मूर्ति निर्माण करता रहा। उसे मंजुलिका एक रहस्यमय समस्या-सी प्रतीत हो रही थी। उसने सोचा कि क्या ही अच्छा होता, यदि एक बार वह उससे बात कर पाता। उसे विश्वास था कि वह उसे एक बार अपनी ओर आकर्षित करने में अवश्य सफल हो सकेगा। किंतु—

दिन पर दिन बीतते गए, उसे मंजुलिका से भेंट होने का कोई अवसर न मिला। न तो कभी मंजुलिका ही ने उसे ऐसा अवसर दिया, और न जगदीश ही ने।

कहते हैं, एक दिन जगदीश ने मंजुलिका से कहा भी था कि "यदि खाना ही भेजना है, तो उन्हें यहीं बुलाकर ही क्यों नहीं खिला देतीं ?"

मंजुलिका बोल उठी—"बस, यही ठीक है। अपने घर पर रोज़ बुलाने की चकल्लस मैं नहीं पालती।"

कुछ खिसियाकर जगदीश बोले—"तो फिर खाना ही रोज़ भेजने की क्या आवश्यकता है। अपना प्रबंध वह स्वयं होटल से करेंगे।"

क्षण-भर चुप रहकर मंजुलिका बोली—"जब जैसी इच्छा हो, कीजिए। मैं घर में बुलाकर किसी को न खिला सकूँगी।"

जगदीश चुपचाप चले गए। शाम को मंजुलिका ने खाना नहीं भेजा। अंत को त्रिभुवन को होटल की शरण लेनी पड़ी।

रात्रि में जगदीश ने कहा—"आज क्या खाना नहीं गया?"

धीरे से मंजुलिका ने कहा—"नहीं।"

जगदीश चुप हो गए। मंजुलिका ने कहा—"और नैनीताल चलने का क्या हुआ ?"

जगदीश ने कहा—"अभी कुछ ठीक नहीं है। समय आने पर प्रबंध हो जायगा।"

मंजुलिका को यह शुष्कता बुरी लगी। जगदीश पलँग पर लेटे हुए थे। मंजुलिका उन्हीं के पास बैठ गई, और बोली—"आपके इस शुष्क व्यवहार का कारण मैं नहीं समझ पा रही हूँ, इधर कुछ दिनों से।"

जगदीश हँसने की चेष्टा करते हुए बोले—"ऐसी तो कोई बात नहीं है। और शुष्कता तो तुम्हारी भी उत्तरोत्तर उन्नति पर ही जा रही है।"

मंजुलिका चुप रही। जगदीश ने धीरे से मंजुलिका के हाथ को अपने हाथ में लेते हुए कहा—"इस शुष्कता में क्या कभी कमी न होगी मंजु ?"

अपना हाथ हटाते हुए मंजुलिका बोली—"मनुष्य को अपने वचन पर दृढ़ रहना चाहिए। मैं जीवन में एक बार जो निर्णय कर लेती हूँ, वही होता है।"

जगदीश के चेहरे पर कुछ विरोध के भाव उत्पन्न हुए। वह बोले—"मनुष्य एक सीमा ही तक सहन कर सकता है। परिस्थितियाँ हमको मजबूर करती हैं कि हम अपने स्वभाव को बदलें। मैं तो···"

मंजुलिका ने खड़े होते हुए कहा—"मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहती। मैं अपने निश्चय से एक इंच भी न डिगूँगी। यदि आपने व्यवहार-परिवर्तन किया, तो मुझे भी दूसरा निर्णय लेना पड़ेगा। अच्छा, अब मैं सोने जा रही हूँ।"

कहकर मंजुलिका जीने से चढ़कर ऊपर कमरे में सोने चली गई।

जगदीश उसी प्रकार लेटे रहे।

× × ×

त्रिभुवन ने घर पर पहुँचकर आवाज दी—"संपादकजी !"